प्रकाशक
वीरेन्द्रकुमार सकसेना
नवयुग ग्रंथ-कुटीर
बीकानेर

पहली बार

सूची

यशस्वी लेखक के उपन्यास और कहानी-संग्र

बहूरानी	२)
भाभी	२)
सजला	३)
चित्रपट	१॥)
वंदनवार	१।)
धूपछांह	१॥)
सलाइयां	२॥)
दिगन्त-रेखा	१।)

कोयले की खान में

रुस्तम काम पर जाते-जाते रोज अपनी स्त्री को कह जाता है खाना तैयार रखना। मैं आते ही खाऊँगा। दिन भर काम करते-करते भूख लग जाती है। देखो, आलस न करना, पार्वती!

पार्वती कुछ उत्तर न देती। केवल सिर हिलाकर स्वीकृति का अर्थ रुस्तम खूब जानता है। इसीसे वह झल्ला उठता, और कहता जाता—समझ में नहीं आता दिन भर तेरे को ऐसा क्या आलस घेरे रहता है? कभी खाना ठीक समय पर तैयार नहीं कर पाती। जब आ जाता हूँ तब चूल्हा-चौका करती है। तेरी अजब लीला है।

पार्वती इस भर्त्सना का कोई प्रतिवाद नहीं करती। केवल अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से पति को कुछ इस तरह देख देती कि वह फिर कुछ न कहता। चुपचाप काम पर चला जाता। पार्वती थोड़ी देर इसी तरह मूर्ति बनी बैठी रहती। फिर उठती, भोजन करती। बरतन माँजती-धोती चौका देती। इन कामों में वह ऐसी निपुण प्रतीत होती है कि मुश्किल से उसे आधा घन्टा लगता। इसके बाद उसे घर में करने को कोई काम न रहता। परन्तु उस खाली समय में भी वह न तो कभी एक क्षण को विश्राम करती, न

कोई दूसरा काम ही छेड़ती। उसके घर के पास सैकड़ों क्वार्टर हैं जिनमें सारे दिन चहल-पहल रहती है। कहीं कोई बच्चा रोता है तो कहीं कोई स्त्री बेमौसम मलार गा उठती है। कहीं दो स्त्रियों में हाथ नचा नचाकर लड़ाई होती है तो कहीं दो चार औरतें साथ बैठकर नाना विषयों की चर्चा छेड़ती हैं। पार्वती को इनमें किसी से कोई मतलब नहीं। वह किसी लड़ाई-झगड़े, मेल-मिलाप या आनन्द-उत्सव में भाग न लेती। कभी कभी कोई स्त्री जबरदस्ती आकर उसे बुला ले जाती तो वह मिट्टी के ढेले की तरह जाकर वहां बैठी रहती। बैठे-बैठे थककर चली आती। उसके चले आने पर स्त्रियों में परस्पर उसके स्वभाव की आलोचना होती और वे उसे घमंडिन ठहरातीं या फूहड़ परन्तु पार्वती का उससे कुछ आता-जाता न था।

पार्वती ने अपने क्वार्टर में एक गोल पत्थर की बटिया लाकर रख छोड़ी है। वही उसके शालिगराम हैं। वही उसकी दुर्गा हैं। वह दिन भर भी उन्हीं के सामने हाथ जोड़े बैठी रहती है। वह नहीं जानती है कि वह किसका ध्यान करती है। वह यह भी नहीं जानती है कि पाठ-पूजा किस तरह किया जाता है। लेकिन उसे अपने भगवान पर, मालूम पड़ता है अगाध श्रद्धा है, क्योंकि उसके मुख पर कभी संशय की छाया नहीं पड़ती। परम विश्वास की झलक से उसका मुख सदा दैदीप्यमान रहता है।

पार्वती की अवस्था इक्कीस वर्ष से अधिक नहीं है। पांच वर्ष पहले उसका विवाह हुआ था। वह तब अपने गांव में रहती थी। उसके पिता और भाई सभी खेती करते हैं। उसके ससुर भी

किसान है। लेकिन न जाने क्यों किसानी में रुस्तम का जी नहीं लगता है। इसीसे दो-ढाई साल हुए होंगे वह घर से भाग आया और कोलरी में नौकरी करली। एक डेढ़ बरस तक तो वह अकेला ही रहा। बाद में जाकर पार्वती को भी ले आया। तब तक पार्वती को कोलरी के जीवन का कुछ पता न था। यहां आने पर इसी एक साल में उसने सब कुछ जान लिया है। कोलरी में काम करनेवाले का जीवन किस प्रकार हर समय खतरे में रहता है, यह उससे अब छिपा नहीं है। ऐसा दिन शायद ही कभी आता हो जब वह रुस्तम से नौकरी छोड़ देने और घर चलने का अनुरोध न करती हो, परन्तु रुस्तम उसकी बातको सदा ही अनसुनी कर देता है। उसे पार्वती के भीरुतापूर्ण उपदेश को मानने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वह पुरुष है। पुरुष का जीवन खतरों के बीच से गुजरने में ही सार्थक होता है। इस प्रकार की राजपूती वीरता का आदर्श उसे सदा अपने काम में लगे रहने के लिए बाध्य करता है। इसीलिए पार्वती की बातें सुनते-सुनते जब उसके उत्तर की अवश्यकता समझता है तब इस प्रकार कह उठता है — पार्वती, मैंने इतने बरस तक तो बाप की कमाई खाई। अब क्या जीवन भर खाता रहूंगा? यह मुझसे न होगा। अपने पाय-पांव चलते हैं, इनसे क्या मैं अपने और तेरे पेट के लिए भी पैदा न करूं?

इन बातों का पार्वती बड़ा युक्तियुक्त उत्तर देती। वह कहती— बाप की कमाई खाने को मैं कब कहती हूं? मैं तो कोलरी की नौकरी नहीं चाहती।

सकुशल लौट चलेंगे उस दिन को मैं धन्य मानूंगी।

यही होगा पार्वती! लेकिन तू जरूरत से अधिक डर जाती है। तू नहीं जानती कि मरता वही है जिसका काल आ गया है। जिसका काल नहीं है वह मौत के मुँह से भी निकल आता है। आज की घटना को ही ले ले और देख जहाँ पूरे डेढ़-सौ आहत हुए हैं वहीं पचीस साफ बचकर निकल आये। उनके एक खरोंच भी नहीं लगी। भगवान् जिसे रखना चाहता है उसे कोई नहीं मार नहीं सकता है, पार्वती!— कहकर रुस्तम ने उसका मुँह पकड़कर ऊपर उठाया।

पार्वती— यह ठीक है परन्तु·········

रुस्तम— अब रहने दे इन बातों को। उठ, भोजन की तैयारी तो कर। भूख के मारे मेरी तो आँतें चुसी जा रही हैं।

अभी बनाती हूँ— कह कर पार्वती हल्के मन से उठ खड़ी हुई और सामान निकाल कर रसोई की तैयारी में लगी।

जब भोजन करके रुस्तम सोगया तो पार्वती अपने उपासना मंदिर में जा बैठी और भगवान की स्तुति करने लगी। आधीरात गये रुस्तम की आंख खुली। बिस्तर पर पार्वती को न पाकर वह बड़ा विस्मत हुआ, उठकर बैठ गया। आंखें मलीं, देखा—एक छाया पृथ्वी पर माथा टेके दण्डवत कर रही है।

रुस्तम ने पुकारा—पार्वती!

पार्वती चौंक पड़ी। उसका ध्यान भंग होगया। रुस्तम ने पूछा—सोई नहीं? क्या कर रही?

पार्वती उठ बैठी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। रुस्तम ने उसका ठंडा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—आधी रात तक तेरा पूजा-पाठ समाप्त नहीं होता? इतनी तपस्या किस लिए कर रही है पार्वती? अब और कौन-सा वरदान पाने की इच्छा है?

बेचारी पार्वती क्या बतलाती? वह चुपचाप आकर बिस्तर पर लेट गई।

इतने पर भी भगवान ने उस बेचारी की नहीं सुनी। उसके हठी पति ने भी अपने वचन का पालन नहीं किया। कोलरी की नौकरी वह छोड़ नहीं सका। बार बार प्रतिज्ञा करके भी अब तक वह अपनी सती-साध्वी की इच्छा को मान नहीं सका। आज-कल, आज-कल करते-करते लगभग तीन महीने और बीत गये।

गर्भ के प्राथमिक लक्षणों से रुग्ण पार्वती उस दिन रुस्तम के काम पर जाने के समय भोजन भी नहीं बना सकी। बिना कुछ खाये-पिये ही वह चला गया। यह दुःख लिए हुए ही वह पड़ी थी। शरीर इस काबिल नहीं था कि वह उठकर बैठती और कुछ कर लेती। अपनी यह दशा देखकर वह सोच रही थी कि शाम तक भी वह कुछ कर पायेगी कि नहीं? क्या रात को भी इसी तरह बिना खाये-पिये रुस्तम को रह जाना पड़ेगा?

इसी समय एक भीषण धड़ाका हुआ। पृथ्वी क्षण भर के लिए विकंपित हो उठी। पृथ्वी से भी अधिक पार्वती का हृदय आंदोलित हो उठा। अचानक गैस के जल उठने से खान में आग लग गई और धमाके के साथ पृथ्वी की सतह खान के अन्दर धँस गई। खान का

द्वार लगभग बंद हो गया।

कोलरी की उस सारी बस्ती में हाहाकार मच गया। ऐसा भयानक दृश्य कभी उपस्थित न हुआ था। पार्वती के प्राण निकले जा रहे थे। कोई ऐसा न था जो रुस्तम की खबर लाकर उसे देता। सबको अपनी अपनी पड़ी थी।

अपनी रुग्णता को भुलाकर पार्वती पागल बनी घूमती थी। वह बराबर यही चिल्ला रही थी— हाय, मैंने उन्हें भूखा-प्यासा जाने दिया। न जाने क्या हाल हुआ होगा? मैं तो जानती थी, यह कोलरी एक दिन मेरे प्राण लिए बिना न रहेगी!

परन्तु उस दिन भगवान ने पार्वती पर अपनी पूरी कृपा की। कोलरी में रह कर भी रुस्तम बाल-बाल बच गया। उसके शरीर पर छोटी-सी जरब भी नहीं आई परन्तु रक्षा के कार्य में लगे रहने से वह दस बजे रात से पहले घर नही पहुँच पाया। जब घर पहुँचा तो पार्वती का बुरा हाल हो गया था। वह खड़े खड़े बेहोश होकर गिर पड़ी थी। गिरने का कुछ ऐसा आघात हुआ, कि असमय में ही उसका गर्भपात हो गया।

न मालूम कितनी देर से खून उसके शरीर से बराबर बह रहा था। घर के सारे फर्श पर कीचड़ हो गई थी। पास-पड़ोसी सभी को अपनी - अपनी पड़ी थी। किसी ने उसकी की सुधि न ले पाई जब रुस्तम अँधेरे में टटोलता हुआ द्वार पर पहुंचा तो उसका हृदय धक-धक करने लगा। उसने पुकारा— पार्वती! ओ पार्वती!

कोई उत्तर नहीं। वह भीतर घुसा तो पैर रक्त की कीचड़

में लथपथ हो गये। किसी तरह अँधेरे में पृथ्वी पर पड़ी पार्वती की निश्चेष्ट देह को उसने खोज पाया। थका-मांदा, भूखा प्यासा रुस्तम सिर से पैर तक सिहर उठा। उसका गला सूख गया। उससे चिल्ला कर रोया भी नहीं गया।

कुछ देर इसी तरह रह कर उसने अपने धैर्य का संचय किया। दियासलाई जेब से निकाल कर जलाई। अपनी आँखों के आगे खून का तालाब देख कर उसे निश्चय हो गया कि पार्वती में अब प्राण शेष नहीं हैं। तो भी किसी तरह उसने उसके शरीर को उठाकर चटाई पर लिटा दिया। उपचार के नाम पर कुछ करने की क्षमता उसमें न थी। इसलिए बड़ी आस्था के साथ वह हाथ जोड़कर पृथ्वी पर बैठ गया और भगवान से पार्वती की भीख मांगने लगा।

उसके हृदय से निकली हुई पुकार को ज्ञात होता है भगवान ने बड़े ध्यान से सुना और स्वीकार किया। पार्वती के शरीर में जीवन के चिह्न देख पड़ने लगे। वह दो-तीन दिन में चारपाई से उठ खड़ी हुई। रुस्तम के आनंद का पार न था। गर्भस्थ शिशु की थोड़ी बहुत चिन्ता होती पर रुस्तम को पार्वती और पार्वती को रुस्तम के मिल जाने से वह कुछ असर न रखती थी।

स्त्री के स्वस्थ हो जाने पर रुस्तम कोलरी में काम करने नहीं नौकरी छोड़ने गया। मैनेजर ने उसकी प्रार्थना को नहीं सुना। उसने कहा – यह नहीं हो सकता। इस समय तुम नौकरी छोड़कर नहीं जा सकते।

रुस्तम ने आपत्ति की परन्तु कोई सुनवाई न हुई। उसे

जबरदस्ती काम पर लगा दिया। इस व्यवहार से वह इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने सारे दिन कोई काम नहीं किया। किसी से बोला भी नहीं। उसके साथी उसे इस प्रकार देख कर उसकी आलोचना करते थे—आज उसे हो क्या गया है? उसकी आँखों में नशा सा कैसा छाया है? यह तो कभी पीता भी नहीं है न कभी क्षणभर को विश्राम करता है।

एक ने बताया— बड़े साहब से कुछ बातचीत हो गई है। औरत के कहने से नौकरी छोड़ कर भागना चाहता था।

पूरा काठ का उल्लू है नौकरी कहीं इस तरह ललकार कर छोड़ी जाती है और उस वक्त जब कि कोलरी में काम करनेवाले केवल पचीस सैकड़ा रह गये हैं।— दूसरे ने अपनी राय दी।

इस प्रकार रुस्तम की चरचा होती रही, परन्तु उसने उस ओर ध्यान भी नहीं दिया। शाम को छुट्टी होने पर वह घर गया। पार्वती भोजन बनाने की व्यवस्था को चली तो रुस्तम ने उसे रोक कर कहा- रहने दे। भोजन मत बना।

पार्वती— क्यों न बनाऊँ? खाओगे क्या?

रुस्तम— अब यहाँ नहीं खाऊँगा। चल सामान बाँध घर चलें।

पार्वती— इतनी रात को?

हाँ, अभी— कह कर रुस्तम सामान इकट्ठा करने लगा।

पार्वती— तनखाह ले आये?

रुस्तम— नहीं।

पार्वती— नौकरी छूट गई?

रुस्तम— नहीं। वे लोग नौकरी नहीं छोड़ने देते।

पार्वती— नौकरी नहीं छूटी, तनखाह भी नहीं मिली तो क्यों चलते हो? दो-चार दिन काम करके तनखाह के पैसे लेकर ही क्यों न चलना?

रुस्तम— नहीं अभी चलेंगे। तनखाह मैंने छोड़ दी। अब मैं कोलरी में एक दिन भी काम नहीं कर सकता।

थोड़ी देर में ले जाने लायक सामान की एक एक गठरी अपने अपने सिरों पर रक्खे दिन भर के भूखे-प्यासे वे दोनों रात के अन्धकार में गायब होगये।

था। संस्कृति, सभ्यता और साहित्य की समस्यायें उसकी विचारी हुई मालूम पड़ती थीं। परन्तु इतनी छोटी अवस्था में विचारने का उसे कब अवसर मिला यह मालूम करना कठिन था। बिना कारण बातचीत करके आत्मीयता जोड़ने की प्रवृत्ति उसमें न थी, तो भी अपने निरभिमान के कारण जिसके संपर्क में आता था उससे उसका सौहार्द्र हो जाना स्वाभाविक था।

उसकी आत्मलीन और गंभीर मूर्ति से डरकर ही शर्माजी ने सुशीलजी के चले जाने पर मुझसे कहा— दोस्त, इसके विषय में आपका क्या ख्याल है ?

मैंने कहा-आपने आखिर क्या देखा ?

शर्माजी— मेरे विचार से सुशीलजी क्रांतिकारी है।

मैंने उन्हें झिड़क कर कहा-तुम्हें हर कोई क्रांतिकारी दिखता है।

शर्माजी— नहीं जी, मैं ठीक कहता हूँ।

उनके कहने में बल था, लेकिन उसका क्या आधार था यह वे नहीं बता सके। उस समय प्रयाग क्रांतिकारियों का अड्डा था। इसलिए खामखाह लोग दूसरों पर शक करते थे।

(२)

शर्माजी के बार बार याद दिलाते रहने पर भी मैं सुशीलजी के निकटतर पहुँचता गया। स्वयं शर्माजी भी उसके खास साथियों में गिने जाते थे। दिन में हम सब प्रेस काम करने जाते थे। वहीं

तब मैं एक प्रेस में काम करता था। एक दिन शर्माजी ने एक नवागन्तुक युवक का परिचय कराया— ये हैं सुशीलजी। दो-चार दिन से यहाँ काम करते हैं।

सुशीलजी की अवस्था मुश्किल से अठारह की होगी। बड़े मजे की अंग्रेजी बोलते थे। दुबले-पतले लेकिन सुडौल और सुन्दर। एक दम गंभीर-प्रशान्त। ऊपर से नीचे तक खद्दर से ढके। बिल्कुल सादे और सरल। बनावट और सजावट का नाम नहीं। शरीर पर एक धोती और एक कुरता से अधिक कुछ नहीं। वह भी उन्हें कम नहीं फबता था। पैर में जूते न थे। सिर पर टोपी न थी, लेकिन चेहरे पर एक शिष्ट सौम्यता इतनी भव्य-दिव्य और आकर्षक थी वह सब कुछ भुला देती थी। ऊँची से ऊँची संस्कृत सोसाइटी में उनकी उपस्थिति बड़ी अच्छी तरह निभती थी।

मैंने एक ऐसे युवक से मिलकर अपने को धन्य माना। बहुत थोड़ी सी और बेमतलब की बातचीत में ही मालूम कर लिया कि यह युवक साधारण मिट्टी का बना हुआ नहीं है। जीवन, समाज और राष्ट्र पर अधिकार के साथ बोलने में उसे कुछ भी जोर नहीं पड़ता

था। संस्कृति, सभ्यता और साहित्य की समस्यायें उसकी विचारी हुई मालूम पड़ती थीं। परन्तु इतनी छोटी अवस्था में विचारने का उसे कब अवसर मिला यह मालूम करना कठिन था। बिना कारण बातचीत करके आत्मीयता जोड़ने की प्रवृत्ति उसमें न थी, तो भी अपने निरभिमान के कारण जिसके संपर्क में आता था उससे उसका सौहार्द्र हो जाना स्वाभाविक था।

उसकी आत्मलीन और गंभीर मूर्ति से डरकर ही शर्माजी ने सुशीलजी के चले जाने पर मुझसे कहा— दोस्त, इसके विषय में आपका क्या ख्याल है ?

मैंने कहा–आपने आखिर क्या देखा ?

शर्माजी— मेरे विचार से सुशीलजी क्रांतिकारी है।

मैंने उन्हें झिड़क कर कहा–तुम्हें हर कोई क्रांतिकारी दिखता है।

शर्माजी— नहीं जी, मैं ठीक कहता हूँ।

उनके कहने में बल था, लेकिन उसका क्या आधार था यह वे नहीं बता सके। उस समय प्रयाग क्रांतिकारियों का अड्डा था। इसलिए खामखाह लोग दूसरों पर शक करते थे।

(२)

शर्माजी के बार बार याद दिलाते रहने पर भी मैं सुशीलजी के निकटतर पहुँचता गया। स्वयं शर्माजी भी उसके खास साथियों में गिने जाते थे। दिन में हम सब प्रेस काम करने जाते थे। वहीं

हमारी मुलाकात होती थी । छुट्टी का आधा घण्टा हम सब सामने के बाग में टहल कर बिताते थे ।

उन दिनों शर्माजी के दिमाग में क्रांतिकारियों की बात ही चक्कर काटती थी । वे कभी कभी बातों में लगाकर हम लोगों को उस स्थान तक ले जाते थे जहाँ दो-तीन हफ्ता पहले ही एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी पुलिस की गोली का निशाना बना था । उस स्थान को दिखाकर वे कहते— आपको मालूम है यह एक पवित्र स्थान है । यहाँ एक देश-भक्त शहीद हो चुका है ।

हमारे साथ एक चित्रकार श्री मुकर्जी भी रहते थे । उनपर इसका काफी असर पड़ता था । उन्होंने इधर कई ऐसे चित्र बनाये थे जो कला के नमूनों के अतिरिक्त देश-भक्तों की प्रिय संपदा थे । सुशीलजी हमारे वार्तालाप के अधिकतर श्रोता ही रहना पसन्द करते थे परन्तु कभी कभी अपने विचारों को रोक नहीं सकते थे । तब हर तरह की आलोचना कर डालते थे । इतने पर भी हमारे शर्माजी को कोई ऐसा मसाला न मिलता जिसकी वे तलाश में थे । लगभग छः मास बीत गये । माघ का महीना आ गया । संगम पर मेले की भीड़ आने लगी ।

हर एक तीर्थ में कुछ लोग धर्म करने आते हैं तो कुछ धन पैदा करने । कुछ अपनी आजीविका को चार दिन चलाने के लिए आ पहुँचते हैं । ऐसे गरीबों की गरीबी का दृश्य संभवतः समर्थ लोगों को दान करने की प्रेरणा करता है । लेकिन गरीबों की दुर्दशा का ऐसे स्थानों पर अन्त नहीं रहता । गाँव के वातावरण में जो जो

लांछनाएँ उन्हें सपने में भी नहीं मिलतीं, उनका पद-पद पर यहां परिचय होता है। उस दिन रविवार था। मैं शर्माजी के साथ त्रिवेणी-स्नान को चला। मार्ग में सुशीलजी भी मिल गये। शायद दो-एक और लोग भी थे। स्नान किया। उसके बाद घूमने की ठहरी। पहले हम लोग सनातनधर्म के उस पंडाल में पहुँचे, जहाँ मालवीयजी अपने शरीर पर अत्याचार करके भी पोंगा-पंथी पंडितों से टक्करें ले रहे थे। उनकी बहुत बड़ी मांग न थी। वे केवल अछूतों के लिये द्वादशाक्षर मंत्र की स्वतंत्रता चाहते थे। पंडित लोग इतना बड़ा अनर्थ करने को तैयार न थे। सुशीलजी को इस सभा में रस न आता था। बड़ी मुश्किल से वे हम लोगों का साथ दे सके। हम लोग लगभग बारह बजे वहां से चले। द्वार पर से ही सुशील ने मालवीयजी की आलोचना शुरु कर दी।

शर्माजी को ब्राह्मण की आलोचना पसन्द न आई, लेकिन जब आलोचक भी एक ब्राह्मण ही था तो क्या करते। सुनते रहे क्या, चलते रहे। चलते चलते देखा सामने अचानक सार्वजनिक नल पर हंगामा हो रहा है। एक कुरूप कुलीना वृद्धा चिल्ला रही थी—अरे, छूना मत! छूना मत!— छू लिया रे! राम-राम छिः छिः, कलजुग आगया रे, कलजुग – घोर कलजुग। हट—हट री कहीं की डोम, चांडाल! नल को भ्रष्ट कर दिया।

हम लोगों का ध्यान बँट गया। फिरन्दर जाति की एक गरीब बुढ़िया की छः सात साल की लड़की भय के मारे सिकुड़ कर नल छोड़ कर दूर जा खड़ी हुई थी। और ससेटी अपनी मां की ओर

ताक रही थी, उसे लग रहा था कि उसने कोई भीषण अपराध कर डाला है।

बुढ़िया भी भयभीत थी और किसी भयानक दंड की संभावना कर रही थी। अपराध की भयङ्करता को कम करने के उद्देश्य से बुढ़िया अपनी बच्ची को कड़ी नजर से देखती जाती थी और मुँह से अज्ञान के लिए क्षमा माँगती जाती थी। परन्तु इससे उस कुलीना के क्रोध पर कोई असर न पड़ा था। वह उसी तरह आग-बबूला हो रही थी और जीभ से गालियों और अभिशापों की अनवरत वर्षा करके भीड़ को आकर्षित कर रही थी।

हम लोग भी बातों में लगे न रह सके। भीड़ में घुसकर यह देखने के लिए पहुँचे कि आखिर मामला क्या है। एक चाँदी-सोने के गहनों से लदी, गहरे रंग की चौड़ी पाड़ की साड़ी पहने, अधकचरे केशोंवाली मोटी-ताजी भद्दी नारी मूर्ति हाथ फैला फैला कर एक छोटी-सी बालिका पर अभियोग सिद्ध कर रही थी। उस अबोध बालिका ने प्यासी होने के कारण रोकते-रोकते नल में हाथ लगा दिया था। यदि कुलीना दौड़ कर उसे न हटाती तो वह पानी भी पी लेती। कितना बड़ा अनर्थ हो जाता! इस बात की कल्पना से सभी परेशान मालूम पड़ते थे। कोई कोई तो उस बालिका और उसकी बूढ़ी मां को डांटने भी लगे थे। कुलीना ने अभी तक नल के पास खड़ी उस बालिका के पुरखों को नरक में भेजते हुए कहा—अब भी नहीं हटती है हरामजादी! किसी को छुएगी क्या?

इतना कह कर वे असंख्य पैरों से रौंदी हुई थोड़ी-सी शुद्ध मिट्टी उठा लाईं और नल को मांजने का उपक्रम करने लगीं। तभी मैंने देखा कि भीड़ में से तीर की तरह निकलकर सुशीलजी ने झपट कर कुलीना को हटा दिया। सीधे हाथ से बालिका को खींचा और उसे पकड़े-पकड़े बायें हाथ से पानी पीने लगे। पानी पीकर बुढ़िया का लोटा उसे भर दिया और बालिका को उसके पास छोड़ कर भीड़ के बाहर निकल आये।

यह कार्य इतना अयाचित और अचानक हुआ कि सब देखते रह गये। कुपिता कुलीना भी कुछ कह न पाईं। पीछे दो-चार धर्म-ध्वजी यों कहते रहे—तभी तो नीच जातियों का दिमाग चढ़ गया है। थोड़ी सी अंग्रेजी पढ़ ली और क्रिस्तान बन गये।

मैं अपने साथियों के साथ नहीं चल सका। आंखों में आंसू उमड़ आये थे उन्हें पोंछ डालने के लिए मैं ठहर गया। आंखें पोंछकर चला तो मुझे भी मालवीयजी का कार्य कुछ आडंबरपूर्ण लगा। मैं सोचने लगा—क्या ही अच्छा होता यदि शास्त्रों, सभाओं और पंडितों के वाग्जाल में समय न खोकर वे भी जीवन में यही बातें चरितार्थ करके दिखा पाते।

(३)

एक दिन सुशील काम पर नहीं आया। मैंने शर्माजी से पूछा तो उन्होंने कहा—किसी जरूरी काम से दो दिन की छुट्टी ली है।

जब तीसरे दिन भी नहीं आया तो शाम को मैं घूमते-घूमते उसके स्थान पर जा पहुँचा। सुशील दूर एलनगंज के एक एकान्त मकान में रहता था। वह अकेला था। इसलिए मैं खुले द्वार के भीतर सीधा चला गया, परन्तु सामने एक युवती को देखकर असमंजस में पड़ गया। मैंने सोचा शायद मैंने घर पहचानने में भूल की है, तभी भीतर से सुशील ने मुझे देख लिया और वहीं से पुकारा—चले आइये मिस्टर वर्मा।

मैं भीतर गया तो मालूम हुआ कि सुशील युवती को एक बुड्ढे से छीन लाया है युवती की अवस्था पंद्रह वर्ष से अधिक नहीं है। एक बूढ़े महाजन ने उसके मां-बाप को धन का लोभ देकर उसे ले लिया था और उससे विवाह करना चाहता था। विवाह जब होने को था उससे कुछ ही पहले तीन-चार नवयुवकों ने सुशील को खबर दी। युवकों के प्राप्य को एक वृद्ध लिये जा रहा था इससे वे बड़े चिढ़े हुए थे परन्तु कोई उस गरीब दुहिता को लेने के लिए तैयार न था। कोई भी अपने भविष्य को इस प्रकार निश्चित न बनाना चाहता था। सभी जीवन में आनन्द और वैभव के स्वप्न देख रहे थे। उनकी ओर से निराश और दुखी होकर सुशील कुछ देर सोच में पड़ गया, इसलिए कि युवती को लाकर क्या करना होगा ? उसे कहां रक्खेगा ? क्या खिलायेगा ? आखिर कर्तव्य-भावना ने जोर लगाया। वह विना कुछ निश्चय किये ही चल पड़ा और किसी विधि से उसे घर से लाया। जब युवती आ ही गई तब उसका रखना इतना

कठिन नहीं रह गया। केतकी को सुशील दादा की छोटी बहिन बनने में कुछ भी समय न लगा। वह मजे से घर में रह रही है। दिन भर दादा बाहर घूमते हैं। रात को आकर छत पर सो रहते हैं। घर में केतकी का राज है।

इस संक्षिप्त कहानी के पीछे एक बवंडर उमड़ रहा है। दुनियां बूढ़े महाजन के दुष्कृत्य को दो ही दिन में भूल गई है। वह सुशील के चरित्र से इतनी विक्षुब्ध है कि उसके विरोध में अपनी सारी शक्ति का परिचय दे रही है। बूढ़े महाजन का सहयोग भी लिया जा रहा है। सुशील को भी खबर है पर वह बेखबर है। कर्तव्य के आगे विश्व-विरोध को उसने सदा तुच्छ माना है।

मैंने उससे कहा—आप यह मकान छोड़ दो ?

केवल इस डर से कि वे मुझे भय दिखाते हैं ?—उसने पूछा।

मैंने उत्तर दिया—कुछ भी समझिये।

नहीं वर्मा साहब, सुशील चटर्जी अन्याय को मिटाने के लिए हरदम मर मिटने को सदा तैयार है।—फिर थोड़ी देर ठहर कर बोला—और आप तो विवाह आदि में जात-पांत के हिमायती नहीं हैं ?

बिल्कुल नहीं—उसका आशय न समझ कर मैंने उत्तर दिया।

सुशील बोला—तो आप ही क्यों नहीं मुझे सहायता देते ? केतकी बड़ी अच्छी लड़की है। आपने शायद पूरी तरह उसे नहीं देखा है।

केतकी ने सिर हिला दिया। मैं बीच का दरवाजा बंद कर लेने को कहकर चला आया पर शायद उसने दरवाजा बंद नहीं किया।

सवेरे मायके से लौटकर मेरी भाभी ने केतकी को विस्मय के साथ देखा। मैंने अपने मित्र की बहन कह कर उसका परिचय कराया और कहा—यह तीन-चार दिन तक यहां रहेंगी। फिर इनके भाई आकर इन्हें ले जायेंगे।

भाभी ने मेरी बात का पूरा विश्वास कर लिया, यह मैं नहीं कह सकता पर उन्होंने बाहर से अविश्वास का कोई लक्षण नहीं दिखाया। मैं निश्चिंत हुआ। किन्तु जब पूरे पन्द्रह दिन बीत चले तो भाभी ने केतकी से पूछा—क्यों तेरे दादा कब लेने आयेंगे?

केतकी रोनी सूरत बना कर बोली—न जाने दादा पर क्या संकट आ पड़ा है। नहीं तो वे कभी रहने वाले न थे।

मैं सुन रहा था। मेरे मन में यों ही बड़ी बेचैनी थी। केतकी की बात ने हृदय में और हलचल उठा दी। नाना विचार आने जाने लगे। आखिर मुझे शर्माजी की बात याद आई। उन्होंने कहा था कि सुशील चटर्जी क्रांतिकारी है। मैं मन ही मन सोचने लगा—क्या सचमुच शर्माजी की बात ठीक है? आखिर वह कहां जा सकता है?

दूसरे दिन आधी रात को एक कार द्वार पर आकर रुकी। मैं जाग रहा था। मुझे लगा कि वह सुशील के सिवा और कोई
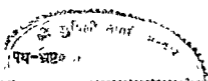
नहीं हो सकता। मैंने झट द्वार खोल कर झांका। मेरा अनुमान सच था। सुशील ने कार में से सिर निकालकर कहा—नमस्कार।

मैं—नमस्कार, आओ न।

सुशील—केतकी जाग रही है?

मैं—शायद।

सुशील—उसे लेने आया हूं। आपको बहुत कष्ट दिया। अब ठहरने का समय नहीं है। उसे कह दीजिये कि आ जाय।

मैंने भाभी को जगाकर कहा—केतकी के दादा उसे लेने आये हैं। उसे भेज दो।

भाभी—इस समय?

हां, अभी। वे सड़क पर खड़े हैं।—कहकर मैं चला आया?

दस मिनट बाद केतकी आ पहुंची। वह जैसे जानती थी कि उसके दादा कार लेकर ही उसे लेने आयेंगे, इस तरह बिना किसी झिझक के वह उसमें जा बैठी। सुशील ने मुझे नमस्कार किया और कार स्टार्ट कर दी।

भाभी ने द्वार बन्द करके मुझसे पूछा—केतकी के दादा तो बड़े आदमी मालूम पड़ते हैं?

हां—कहकर मैंने संक्षेप में उत्तर दिया, और सीधा अपने सोने के कमरे में चला गया। लेकिन उस रात को मैं बिल्कुल नहीं सो सका। कभी सुशील, कभी बहुमूल्य कार, कभी केतकी आ-आ कर मेरे ध्यान को भंग कर ।

पांच वर्ष बाद लाहौर के एक प्रसिद्ध दैनिक का संपादक होकर मैं वहां गया। संपादकीय विभाग में और भी दो-एक नियुक्तियां होने को थीं। उनका विज्ञापन पत्रों में दिया गया। अनेक आवेदन पत्र आये। सुशील ने भी लिखा। मैंने प्रयत्न करके उसकी नियुक्ति की स्वीकृति ले ली। उत्तर लिख दिया।

सुशील केतकी को लेकर लाहौर पहुंच गया। मैंने देखा, अब सुशील पहले वाला सुशील नहीं है। न वह सादगी है, न वह ताजगी। चेहरे पर पिछले पांच वर्ष, पचीस वर्ष का भार छोड़ कर चले गये हैं। सौम्यता के स्थान पर कठोरता की लिपि अंकित है। तब वह पान नहीं खाता था, सिगरेट नहीं पीता था। अब शराब पिये बिना काम करने लायक नहीं होता। खतरे को निश्शंक निमंत्रण देने का साहस अब उसमें नहीं दिखता।

केतकी ने मुझे बताया कि पिछले पांच साल कितने कष्टों के साल थे। सुशील जहां गया, वहीं संसार की अनीति और कटुता ने उसके खून को खौलाया। संघर्ष हुआ और उसे अपने स्वार्थों का बलिदान करना पड़ा। समाज का तिरस्कार, दुनियां की
, लोगों की उदासीनता पाकर भी जिन्दगी को बिताने लायक
धा मिल जाती तो बहुत था। वह भी नहीं मिली। कष्टों के
कंटकमय पथ में सुशील सुशील नहीं रह गया। केवल केतकी
उसका भाव नहीं बदला है। इतनी कठोर परिस्थितियों
उसने उसे भार नहीं समझा है। बराबर अपनी जिम्मेदारी

महसूस की है। दुनियां के नाना लांछन लगाने पर भी छोटी बहन की तरह ही उसे माना है। इसीलिए इस शराबी और नशेबाज दादा पर भी केतकी को अपार श्रद्धा है। उसने भी बुरी से बुरी दशा में भी सुशील की सुख-सुविधा का यत्न किया है।

एक दिन हंसी हंसी में सुशील ने कहा—मिस्टर वर्मा, कैसे मजे की बात है, सारी दुनियां हम दोनों को पति-पत्नी नहीं तो कुछ इसी संबंध से देखती है परन्तु यह केतकी मुझे अपना पति ही नहीं स्वीकार करती।

केतकी सलज्ज कोप से भर कर बोली—दादा, मैं कहे देती हूँ मैं तुम्हारा मुँह बंद कर दूंगी।

मेरी समझ में ही नहीं आया कि मैं क्या उत्तर दूं। मैं हंसकर रह गया। सुशील फिर बोला—और मैं कहता हूँ कि मुझमें क्या कमी है जो मैं इसे पंसद नहीं। लाला काशीराम की तरह मैं बूढ़ा नहीं हूँ देखने में भी कोई विशेष बुरा नहीं हूँ। अगर यह चाहे—

केतकी—बस-बस दादा! लो, मैं जाती हूँ। तुम यही तो चाहते हो कि मैं चली जाऊं।

सुशील—नहीं नहीं—तू बैठ मैं कुछ न कहूंगा।

सुशील हाथ पकड़ कर केतकी को बिठाने लगा परन्तु वह हाथ छुड़ा कर चली गई। तब सुशील बोला—मिस्टर वर्मा,

केतकी की चिन्ता ने मुझे बूढ़ा कर दिया है। मेरे जीवन का सारा प्रोग्राम इसके आने से पलट गया। मैं देख रहा हूँ कि मैं कहां से कहां आ गया हूँ। मैं जिस काम के लिए अपने को समर्पित कर चुका था उससे आज पथ-भ्रष्ट होकर यहां आ पहुंचा हूँ। कौन जाने कहां जाकर रहूँगा? जो पुकार मुझे निरन्तर कानों के समीप सुनाई पड़ती थी वह क्षीणतर और दूरतर होती जा रही है।

उसके कहने में हृदय की अपार वेदना की ध्वनि थी। तपोभ्रष्ट ऋषि की भांति उसका चेहरा विरूप हो गया था। मैंने कहा—जीवन तो भूल-भुलैयाँ है। इसमें भूले विना असल तत्व की प्राप्ति नहीं होती। हताश होकर प्रयत्नशून्य होने से काम नहीं चलता।

ठीक कहते हो मिस्टर वर्मा! यदि ऐसा न होता तो अब तक मेरा अस्तित्व भी न रहता।—सुशील ने कहा।

उसी रात को सुशील अन्तर्द्धान हो गया। इस वार न वह मेरे लिए कोई पत्र छोड़ गया, न केतकी से कुछ कह गया। किन्तु केतकी से मालूम पड़ा कि उसे पहले से ही कुछ ऐसा डर था। उसके कोई मित्र उससे गुप्त रूप से मिलते रहते थे और उन्हें सहायता देने के लिए जाना चाहता था। कभी-कभी केतकी से अपनी संभावित यात्रा के विषय में कहता भी था।

केतकी अकेली रह गई। इसका मतलब था मैं उसे अपने यहां ले आऊं। सो मैं उसे ले आया। एक दिन सुशील ने प्रस्ताव किया था कि मैं केतकी को पत्नी रूप से स्वीकार कर लूं। मैंने इन्कार कर दिया था। उसको पांच वर्ष से अधिक हो गये हैं। तब से दुनियां बदल गई है। मेरे मन का भाव भी बदल गया है। अब मैं अपने को किसी बंधन से बंधा नहीं समझता। केवल भाभी की स्वीकृति और आशीर्वाद मिल जाय तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे लिए वेद और पुरान, माता और पिता मेरी भाभी ही हैं। उन्हें मैंने एक पत्र लिख दिया। चौथे दिन उनका बधाई का तार मुझे मिला। इतनी जल्दी स्वीकृति मिल जाने का कारण शायद यही था कि केतकी के दादा बड़े आदमी हैं इस पर भाभी का विश्वास अब तक बना था।

मैंने केतकी से विवाह करने की इच्छा का प्रचार कर दिया। मित्रों और परिचितों में एक हलचल मच गई। सभी इस विवाह को मेरे गौरव और मेरी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे। बरसों एक बंगाली युवक के साथ एक घर में अकेली रह चुकी एक नवयुवती को एक प्रतिष्ठित पत्रकार के योग्य वे बिल्कुल नहीं मानते थे, परन्तु शंकर की तरह इस हलाहल को पी जाने का मैंने निश्चय कर लिया था। मुझे बहुत रोका गया परन्तु विवाह हो गया।

विवाह के अवसर पर मुझे अज्ञात स्थान से सुशील का

एक बधाई-पत्र मिला, बाकी मित्रों से केवल नाराजगी मिली। मैं अपनी सोसाइटी में इस विवाह से एक आउटकास्ट बन गया। मेरे लिए अपने पद पर काम करना कठिन हो गया। त्याग-पत्र देकर केतकी को ले मैं प्रयाग वापस चला आया। अब पता लगा कि ऐसी केतकी से विवाह कर लेने की अनुमति भाभी ने कभी नहीं दी थी जिसने कुलवंती के गौरव को ठोकर मार कर एक अनजान युवक का आश्रय लिया हो और अन्य अपने इस नकली बदनाम क्रांतिकारी दादा को खोकर मेरे गले पड़ी हो। आज मेरे लिए यह समस्या है कि हम कहां रहें ?

कायाकल्प

अपराह्न काल की मीठी धूप लेती हुई, खिड़की में बैठ कर, भवानी कशीदा काढ़ रही थी। पास ही एक पालना लटक रहा था। वह बार-बार पैर से उसे ठेलती भी जाती थी। एकाएक उसका स्वामी कुमारपाल कुछ खबर लेकर आया, बोला—"भला तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

भवानी ने होठों के सामने उंगली दिखा कर कहा—"चुप, तुम बच्चे को जगा दोगे।"

कुमारपाल हंसा। पास आकर बोला—"इतनी सी बात के लिये मुझे रोकती हो। ऐसी खबर है कि तुम आश्चर्य से उछल पड़ोगी।"

भवानी ने वस्त्र गोद में रख लिया। सुई को दांत से दबा कर पूछा—"हां, क्या है ?"

कुमारपाल—"एक विद्वान महात्मा हबशियों के मुल्क से लौट कर आया है। वह कहता है बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के, बगैर किसी लड़ाई-झगड़े के, अंग्रेजी राज्य यहां से हटाया जा सकता है !"

इसी समय पालने में बच्चा रो पड़ा। कुमारपाल उछल कर दो कदम पीछे जा खड़ा हुआ। अपने दोनों कान पकड़ कर ऐंठ डाले।

भवानी ने बच्चे को पुचकार कर दूध पिलाया और फिर पालने में सुला दिया। वह कोमल हृदय और चतुर स्त्री एक बार फिर उस असम्भव और अनहोनी बात पर स्वामी के साथ बैठ कर हंसने के लिये आई, पूछा—"तुम्हें मेरे सिर की कसम है सच कहना वह आदमी क्या बहुत बड़ा जादूगर है? क्या कोई तमाशा करेगा?

कुमारपाल—"यही तो मजा है! तमाशा या जादू भी नहीं करेगा। खून खराबी भी नहीं होगी और वह बड़ा भारी काम कर डालेगा। जो सिराजुद्दौला नहीं कर पाया, जो करते-करते टीपू मारा गया और विद्रोह जिसके प्रयत्न में खुद ही मर गया। उस संसार की सब से बड़ी शक्ति को वह केवल आत्मा के बल से निकाल बाहर करेगा।"

भवानी—"मुझे विश्वास नहीं होता।"

कुमारपाल—"उसके हथियार क्या हैं, जानती हो? सत्याग्रह और चरखा।"

भवानी—"चरखा! हा! हा! हा! तब तो बड़ा तमाशा पड़ता है तब लड़ने के लिये सूत की गोलियां जायंगी। नई तरह की लड़ाई लड़ेगा तो औरतें लड़ने चलेंगी, हूँ मुझे कष्ट न करना पड़ेगा। ये हजरत अब तक

कहां सोते पड़े थे ? इतनी बड़ी लड़ाई के समय शायद यह अपने महायुद्ध की नई प्रणाली का आविष्कार कर रहे होंगे ?"

इस तरह दोनों आधी रात तक खूब हंसते-हंसते सो गये। सवेरे जागे तो भवानी ने मुस्कराकर कहा—जरा बाहर जाकर देखो तो हम लोग किसके राज्य में बसते हैं ? बिसात पर से अंग्रेजों की सेना क्या महात्मा ने उलट दी है ? जरा जल्दी लौट कर बतलाना चरखे की पलटन ने कहीं तुम्हें राजा और मुझे रानी तो नहीं बना दिया ?"

(२)

कुमारपाल दुकान के लिये माल खरीदने दिल्ली गया था। देखा तो बाजार सजाये जा रहे थे। रोशनी का इन्तिजाम हो रहा था। दूकानें दर्शकों से भरी थीं। छतों पर स्त्रियों के जमघट थे। खद्दर की वर्दी पहने स्वयं-सेवकों का ठाट था। अपनी कमर में कसे हुए नोटों के पुलिन्दे को बड़ी सावधानी से टटोल कर वह यह दृश्य देखता हुआ जा रहा था।

थोड़ी दूर जाते ही देखा सामने से कोई भारी जुलूस चला आ रहा है। चारों ओर से लोग जय जयकार चिल्ला रहे हैं। इधर उधर छतों से फूलों की वर्षा हो रही है। वह बड़ी उत्सुकता से आगे बढ़ गया, पर दिल धड़क रहा था। नोटों की जोखिम साथ थी।

लोगों ने चिल्ला कर कहा—"महात्मा गांधी की जय !" दूसरी वार सारे आकाश में एक स्वर गूंज गया—'महात्मा गांधी की जय !' सड़क फूलों से पट गई। कुमारपाल का हृदय खुशी से नाच उठा। उसने मन ही मन कहा—ओह ! जरा मैं भी तो देखूँ। यह तो वही महात्मा मालूम पड़ते हैं। इनकी तो बड़ी पूजा होती है। मालूम पड़ता है सचमुच कोई बड़े आदमी हैं।

वह भीड़ को चीर कर घुस गया। वड़ी मुश्किल से गाड़ी के पास जाकर देखा, एक दुबली-पतली सौम्य मूर्ति हंसती हुई बैठी है। उसका शरीर फूलों से ढक गया है। केवल चेहरा दिखाई पड़ता है। बड़े-बड़े लोग उनके पैरों पर आ आकर सिर रख रहे हैं। कुमारपाल अपने आवेग को रोक न सका। बढ़ कर उस दिव्य मूर्ति के चरण छू लिये। गाड़ी आगे बढ़ गई। वह वहीं फूलों के बिछौने पर खड़ा-खड़ा थोड़ी देर तक सोचता रहा—वड़ा तेजस्वी और प्रतापी पुरुष है ! पर अंग्रेजी सरकार से भी इसका इकबाल ज्यादा है क्या ? इस सरकार का प्रभुत्व लोगों के लिये है तो बड़ा ही घातक। देश में पैसा नहीं रहा

फिरते हैं। कपड़े के लिये उनके पास दाम नहीं

दूकान की ही बिक्री चौथाई रह गई है।—

यह महात्मा जो करने चले हैं, वह एक तरह

। अंग्रेज बड़े व्यौपारी हैं। उनके हथकण्डे सब

आ सकते।

उसी दिन उसने कई रुपये का टिकट खरीद कर महात्मा गांधी की बातें बड़े ध्यान से सुनीं। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ये बातें तो बड़ी ही साफ और सरल हैं। उसके निश्छल अन्तःकरण पर व्याख्यान का पूरा प्रभाव पड़ा। इतनी जल्दी महात्माजी की बात समझने वाला शायद उस सभा में एक कुमारपाल ही था।

वह विदेशी कपड़ा खरीदने गया था, पर पांचों हजार रुपये का खद्दर लेकर लौटा।

(३)

एक बार फिर पति-पत्नी सत्याग्रह के सूत्रधार की बातें छेड़ बैठे, पर इस बार दोनों की राय में अन्तर था। कुमारपाल प्रशंसा के पुल बांध रहा था। महात्माजी ने जिस स्वराज्य की अवधि साल भर की रक्खी थी, वह उसे और भी घटा रहा था।

भवानी ने कहा—जो तुम्हारे जी में आए करो। टाट के थान मंगा कर दूकान में भर लो, पर यह याद रक्खो इस घर की देहरी के भीतर चरखा नहीं आने पायेगा और न मैं तुम्हारा खद्दर छुऊंगी।

कुमारपाल—अगर तुम यह जान पाओ कि खद्दर पहनने का क्या आशय है, तो तुम उसके खुरदरेपन को ध्यान में भी न लाओगी।

भवानी—मैं उसे नहीं जानना चाहती।

कुमारपाल—खद्दर स्वच्छता का चिह्न है। उसमें गरीबों की रोटी है। उसमें तपस्विनी विधवाओं का पवित्र समय लगा हुआ है।

आखिरी बात भवानी के दिल में चुभी जरूर, पर तर्क में हार मानने का उसे अभ्यास नहीं था, इससे बोली—बक-झक न करो। दूकान को देर हो रही है। जिन महात्मा का तुम कई दिन से बराबर गुणगान कर रहे हो। सुना है, सरकार उन्हें जेल की हवा खिलाने वाली है। जो लोग उनके कहने में आंख मूंद कर चल रहे हैं। वे भी न बच सकेंगे।

कुमारपाल तर्क करना व्यर्थ जान कर उठ गया।

(४)

खद्दर की बिक्री बिल्कुल न होगी यह कुमारपाल को मालूम न था। बाजार के रुपये की तड़तड़ी पड़ रही थी। रुपया सब खद्दर में अटक गया था। साख उठती देख कर भवानी के गहने बेच डाले। पर वे थे ही कितने! कुमारपाल ने जहां-जहां से हो सका रुपया इकट्ठा करने की कोशिश की, पर कुछ फल न हुआ। आखिर उन्हें टाट उलट देना पड़ा।

कान में जितना माल था, वह महाजनों ने बांट लिया। न ही मन पति के पागलपन पर रो रही थी। घर में गया था। जहां लक्ष्मी का निवास था, वहां अब चूहे लगे थे।

नगर में कांग्रेस कमेटी की स्थापना हुई। लोगों ने पर आवाज दी—सेठ कुमारपालजी!

भवानी बच्चे को पालने में झुला रही थी। उसकी आंखों से दो बूंद आंसू गिर पड़े। आज सेठ विशेषण उनकी दरिद्रता का उपहास करता था!

कुमारपाल बाहर निकल आए! लोग उन्हें बड़े आदर से कांग्रेस भवन में ले गये। कुमारपाल को कांग्रेस का एक विशिष्ट पद दिया गया। जो नेता बाहर से आये थे उन्होंने अपने व्याख्यान में बड़े अच्छे शब्दों में कुमारपाल जैसे व्यक्ति-रत्न को पाने पर हर्ष प्रकट किया।

कुमारपाल ने कर्तव्य-भार को अनुभव करके अपना सिर झुका लिया।

उस दिन से सारे नगर में कांग्रेस की धूम मच गई। कांग्रेस के साथ साथ कुमारपाल का नाम भी बच्चे बच्चे की जबान पर था।

जिस समय बाहर इस तरह यश का विस्तार हो रहा था, उसी समय घर के अन्दर दरिद्रता की श्रीवृद्धि हो रही थी। कुमारपाल दोनों अवस्था के संधि-चक्र में चुपचाप, कल के एक पुर्जे की तरह, कर्तव्य में रत थे। केवल भवानी कभी-कभी उत्तेजित होकर अपना धैर्य खो बैठती थीं।

(५)

विलायती वस्त्र बेचने वाली दूकानों पर कांग्रेस की ओर से धरना बैठाया गया। हर दूकान के सामने उसके तिरंगे झण्डे

गड़ गये थे । तीन-तीन चार-चार स्वयं-सेवक केशरिया वस्त्र पहन कर आने वाले ग्राहकों को विनीत भाव से समझाते थे । कुमारपाल इस स्वयं-सेवक दल का प्रबन्ध करते थे । वे हर समय जा जा कर परिस्थिति को देखते थे ।

थोड़े ही दिनों में, विलायती वस्त्र की बिक्री एक तरह से बन्द ही हो गई । दूकानदार कुमारपाल का रक्त पी लेने पर उतारू हो गये, पर क्या करते, कोई उपाय न था । स्वयं-सेवक आश्चर्य जनक शान्ति से अपना काम कर रहे थे । उन्हें गालियां दी जातीं तो वे कतई परवाह न करते । उनके अपूर्व धैर्य के सामने किसी की कुछ न चलती थी ।

एक दिन विलायती कपड़े के व्यौपारी सेठ विजयचन्द्र बड़े क्रोध में बैठे थे । कई दिन से कुछ बिक्री न हुई थी । स्वयं-सेवकों को बहुत मारा-पीटा गया था पर फल कुछ न हुआ । आखिर वे पुलिस की सहायता लेने को विवश हुए ।

स्वयं-सेवकों की एक टोली पकड़ कर हवालात में बन्द कर दी गई । सारे नगर में एक तरह का आतङ्क छा गया । तब कुमारपाल खुद ही झण्डा लेकर जा डटे ।

[illegible] देख कर विजयचन्द्र ने व्यंग के स्वर में कहा—तुम्हारा [illegible] का ढंग बड़ा अनुकरणीय है । खैर, मैं इससे नहीं [illegible] भी प्रण है कि तुम्हारे यहां से जो खद्दर की गांठें [illegible] वे चाहे पड़ी पड़ी सड़ जायं पर इस बाजार में [illegible] ।

कुमारपाल ने हंसकर कहा—नहीं, उसका मुझे जरा भी खेद नहीं है। आपको रुपया चाहिये था, आपने बदले में माल ले लिया मैं तो उससे प्रसन्न ही हूँ। बल्कि मुझे दुख तब होता जब आप उसे न लेते।

विजयचन्द्र—ये बातें रहने दो।—विजयचन्द्र की बात का उत्तर न देकर कुमारपाल ने एक ग्राहक को दौड़कर रोका। उसे समझाया वह उनकी बात मान कर लौट गया। दूसरा ग्राहक आया। उसे भी समझाया पर वह न माना। कुमारपाल विजयचन्द्र की दूकान की सीढ़ियों के नीचे लेट रहे, कहा—नहीं मानते हो तो भाई मेरी छाती पर पैर रख कर चले जाओ। ऐसा किये बिना तुम विलायती वस्त्र न ले सकोगे।

इस पर कुछ झगड़ा हो गया। कुमारपाल को पुलिस गिरफ्तार कर ले गई।

बाद को मालूम हुआ। वह ग्राहक गुप्तचर विभाग का ही आदमी था।

(६)

कुमारपाल को डेढ़ साल की सजा हुई। नगर में इससे इतनी उत्तेजना फैली कि लोग कांग्रेस का काम दूने उत्साह से करने लगे।

बहुत से लड़के स्कूल-कालेज छोड़ कर काम में आ लगे। कितने ही लोगों ने सरकारी नौकरियां छोड़ दीं। चारों ओर कांग्रेस का दबदबा छा गया।

जेल में कुमारपाल के साथ बहुत कड़ा बर्ताव किया गया। वे इतनी सख्ती को सहन करने के आदी न थे तो भी उन्होंने जहां तक हुआ सहा। आखिर सहन करने की भी एक सीमा होती है जब उसका भी अतिक्रमण किया गया तो वे प्रतिरोध करने पर उतारू हुए। उन्होंने अनशन आरंभ कर दिया।

चारों ओर से जोर पड़ने पर भी उन्होंने अनशन न त्यागा। शरीर दुर्बल हो गया। इस पर उन्हें जबर्दस्ती अमानुषिक तरीके से भोजन पहुंचाया गया जिससे क्षीण स्वास्थ्य पर और बुरा असर हुआ। कई दिन तक यह संघर्ष चलता रहा। कुमारपाल का शरीर बर्दाश्त न कर सका। वे शैयाग्रस्त हो गये। डाक्टर ने बताया कि उनको क्षय रोग हो गया है। यह समाचार जेल से बाहर जनता में पहुंचा। लोग अधीर हो गये। उन्होंने उनके लिये शोर मचाया। चारों ओर से उन्हें छोड़ देने की आवाज आने लगी पर सरकार चुप थी।

(७)

भवानी स्वामी की बीमारी का हाल पाकर भेंट करने गई। जब वह जेल के फाटक पर उनसे मिलने पहुंची तो वे स्ट्रेचर [illegible]टा कर उसके पास लाये गये। सूख कर हड्डी-हड्डी [illegible]२ थी।

[illegible]क भी बात न कर सकी। उसी तरह लौट आई। उसने समाचार पत्रों में पति की आशंकाजनक तन्दुरुस्ती

पर प्रकाश डाला। वास्तविक दशा का पता लगने पर चारों ओर हाहाकार मच गया।

एक दिन प्रातःकाल चुपचाप जेल से छूट कर कुमारपाल घर आ खड़े हुए। भवानी दौड़कर उनके चरणों में लिपट गई पर यह क्या अस्थिपंजरावशेष शरीर तो तप्त बालू की तरह जल रहा था। उसने झटपट दौड़ कर पलंग बिछाया। लौट कर देखा तो वे कमजोरी के कारण अचेत होकर गिर पड़े थे।

स्वामी की ऐसी संकटापन्न अवस्था थी पर भवानी बेचारी दुखिया अबला डाक्टर न जुटा सकी। डाक्टर को देने के लिए आज उसके यहां पैसे न थे। हाय! उस समय कांग्रेस का कोई आदमी उनकी खबर लेने न आया! यही तो उनका एकमात्र सहारा रह गई थी।

संध्या के पांच बजते कुमारपाल ने सदा के लिये आंखें बन्द कर लीं! सर्वस्ववञ्चिता भवानी पृथ्वी पर लोटने लगी।

मरणासन्न अवस्था में कुमारपाल जेल से मुक्त हो गये हैं—यह खबर कांग्रेस के दफ्तर में पहुंची तो लोग उनके स्वागत को दौड़ पड़े पर दुर्भाग्य कोई उनसे भेंट न कर सका। सारे नगर में एक शोक-सागर उमड़ आया।

अभी दो क्षण पहले भवानी जिनके क्रियाकर्म की फिक्र में चुपचाप अपनी गोद में आंसू गिरा रही थी, देखते ही देखते एक बड़ी भीड़ उनके लिये दौड़ पड़ी। एक भारी जुलूस के

साथ उनकी अर्थी निकाली गई। बहुत से लोग सोचते थे—अहा! यह मृत्यु कितनी गौरव-पूर्ण है!

जब भवानी श्मशान से लौटी तो कांग्रेस के मन्त्री ने आकर कहा—आप हम लोगों की मां-बहन हैं। आपको जिस बात का कष्ट हो वह हम से निस्संकोच कह दीजिये!

भवानी की आंखें सजल हो गईं। उसने कहा—उन्हें चरखा बहुत प्यारा था। उनके सामने मैंने जिद के कारण उसे न मंगाया। यदि हो सके तो आप एक चरखा मेरे लिये भेज दीजिये।

सेठ विजयचन्द्र दूसरे दिन भवानी के पास आकर कहने लगे—सेठजी का चार हजार रुपया हमारे यहां बढ़ती पहुंच गया है। आप कहिये तो वह आपके नाम से जमा करा दिया जाय!

भवानी ने किवाड़ की ओट से देख कर पूछा—आप कौन हैं? उन्होंने तो रुपये का जिक्र नहीं किया था।

उत्तर मिला—बहिन मेरा नाम विजयचन्द्र है! भाव चढ़ जाने से तीन हजार की खद्दर की गांठें सात हजार की हुई हैं।

भवानी—पर वे गांठें तो तुम्हारी हो चुकी थीं।

विजयचन्द्र ने विनीत भाव से कहा—नहीं! मुझे जिस पर मिती रुपया मिलना चाहिए था उसी पर उसकी जगह सात हजार मिला है। अतः वह आपही का है! आप उसे स्वीकार करें।

[illegible]—मैं रुपया लेकर क्या करूंगी?

[illegible]न्द्र—आपको लेना पड़ेगा। वह आपका धन है।

भवानी कुछ सोचकर धीरे धीरे बुदबुदायी—यह विजयचन्द्र कैसा है। यह तो खद्दर पहने है !

विजयचन्द्र ने हंसकर कहा—आप आश्चर्य न करें। कांग्रेस ने ऐसे अनेक आदमियों को नया चोला प्रदान किया है। आप मेरी बात पर विश्वास कीजिये।

भवानी चुपचाप खड़ी सोचती रही कि यह भी तो अब पहले की भवानी नहीं रह गई है।

विजयचन्द्र ने फिर कहा— अब मैं जाता हूं। यह चार हजार रुपया मैं अपने छोटे भय्या रतनपाल (भवानी के पुत्र) के नाम जमा करा देता हूँ। उसका मासिक सूद आपके पास आ जाया करेगा।

भवानी के चरखे की आवाज में उसके वे शब्द मिलकर एक मधुर रागिनी की तरह गूंज कर रह गये।

सरकार ने कांग्रेस के स्वयं-सेवक-दल को गैर-कानूनी संस्था करार दे दिया है, यह बात बाबू भवानीदीन लोगों से सुन चुके थे। उन्हें यह समझना भी आम लोगों की तरह बाकी न था कि अंग्रेज सरकार की घोषणा विधाता का वाक्य होती है, उसे कोई टाल नहीं सकता। अब तक उसने जब जब जो कुछ कहा है वही होता आया है। इसलिये जब उन्होंने यह हल्ला सुना कि सरकार की यह घोषणा नाजायज है जनता को चाहिये कि लाखों की संख्या में स्वयं-सेवक बनकर उसकी अन्यायपूर्ण आज्ञा का शान्ति के साथ उल्लंघन करे तब उन्हें हंसी तो जरूर आई ! पर कुछ लेना-देना था नहीं इसलिये चुप रहे। उन्हें न सरकार से काम था, न जनता से। वे एक छोटे से मकान में रहते थे। एक गृहस्थी को अपने बुड्ढे हाड़ों की गाढ़ी कमाई से चलाते थे। वही रात दिन एकमात्र उनकी चिन्ता का विषय रहती थी, और किसी से उनका मतलब केवल सुनने भर को था। इसीलिए नेताओं के दुस्साहस पर उनकी हँसी कोई अर्थ नहीं रखती थी।

लेकिन उन दिनों कांग्रेस का इतना जोर था, कि संसार में रहने वाला मनुष्य नाम का जीव उससे अपने को बिल्कुल पृथक नहीं रख सकता था। प्रायः रोज ही उन्हें यह सुनाई देने लगा कि अमुक स्थान में इतने स्वयं-सेवक गिरफ्तार हुए और अमुक स्थान में इतने। वे सरकार की शक्ति का करीब-करीब अन्दाजा पहले से ही रखते थे।

सिवा यमराज की शक्ति के और किसी की शक्ति को वे उससे श्रेष्ठ नहीं समझते थे, और क्या जाने यमराज की शक्ति से भी बढ़ कर ही उन्होंने क्यों न उसे समझ लिया हो। कोई मतलब न रहते हुए भी वे प्रजा की बुद्धि पर तरस खाते थे और जन-साधारण की भूलों पर दुःख प्रकाश करते थे। उन्होंने ऐसी बढ़ियां अनेक भी देखी थीं, और कभी भी सरकार का बाल बांका नहीं हुआ था।

मुहल्ले के कुछ नौजवान उन्हें दकियानूसी विचारों का आदमी कहने लगे थे, और अक्सर आ-आकर उनसे बहस-मुबाहसा करने लगते थे। उनके सामने जब वे जेल को कृष्ण-मन्दिर बतलाते तो वे कह उठते—हां-हां, ठीक है। तुम, वहीं जाकर कृष्ण के दर्शन करना। क्या मैं आशा करूं कि तुम्हें शीघ्र ही कृष्ण-मंदिर में जाने का सौभाग्य प्राप्त होगा?

यह सब कहते समय वे न जाने जेल की कैसी कल्पना करने लगते थे, क्योंकि दूसरे ही क्षण वे अपने शब्दों को वापस ले लेते, और कहते—भाई! मैं नहीं चाहता कि तुम कभी भी जेल

का द्वार देखो। ईश्वर न करे वह घड़ी दुश्मन के सामने भी आये।

(२)

उस दिन कचहरी से लौट कर उन्होंने कपड़े भी नहीं उतारे थे कि उनकी विधवा पुत्र-वधू अपने लड़के की शिकायत लेकर आ पहुंची। उसने हुक्के को उनके सामने रख कर कहा—पिताजी! जरा देखो दिवाकर क्या कहता है? उसने न जाने किस में नाम लिखा लिया है। कहता है, जेल जायगा—पिताजी! तुम जरा उसे बुलाकर डांट दो। मुझे तो बड़ा डर लगता है।

बहू के कम्पित कण्ठ की व्याकुलता से वे उसके डर को अच्छी तरह समझ गये, इसीलिए जरा सी लापरवाही दिखाते हुए कहा—डर की क्या बात है री। नाम लिखा लिया है तो मैं कटवा दूंगा। तू जा, रसोई कर—अरे, ओरे! दिवाकर! किधर गया रे, जरा मेरे पास तो आ!

दिवाकर मकान में न था। उसे कुछ ही पहले कांग्रेस दफ्तर का आदमी बुला ले गया था। बहू ने यह बात उन्हें रसोई-घर से बतला दी।

अपने दबंग और पुरुषोचित जिस साहस से उन्होंने बात की बात में बहू का भय दूर कर दिया था, वह पल भर में धैर्य के समस्त भाव को खो बैठा। वे चुपचाप हुक्के की नली मुंह में लगा कर चित्र-पट पर खचित निर्जीव-निस्पन्द चित्र की भांति ... भाव से बैठे रह गये।

चम्पा ने रसोई-गृह से भोजन तैयार होने की सूचना दी, तब सचमुच उन्हें वस्तु-स्थिति का एक बार फिर से विचार करने की चेतना प्रतीत हुई। वे बाल-स्वभाव दिवाकर की चंचल प्रकृति की मन ही मन आलोचना करके हुक्के में कश मारने लगे। धुंआ धीरे-धीरे चक्कर बांध कर ऊपर उठने और शून्य में अदृश्य होने लगा।

(३)

आज्ञाकारी दिवाकर से जो चाहें करा सकने की निर्मूल धारणा उनके मन में सदा से अकाट्य रूप से वर्तमान थी; उसका जब प्रकट स्वरूप उनके सामने आया—जब दिवाकर ने अपनी स्वतन्त्र तर्क-बुद्धि का प्रयोग करते हुए कह दिया—बाबा! हम स्वराज्य लेंगे। इस सरकार ने हमारे देश को तबाह कर दिया है। हमारी सारी आजादी अपने हाथों में कर ली है—और स्वराज्य तब तक नहीं मिल सकता जब तक हम सरकार से पूरी तरह असहयोग न करें—तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसे बहुत समझाया, पर दिवाकर किसी तरह उनकी बात न मान कर स्वयं-सेवकों में से नाम कटाने को तैयार न हुआ।

जो बात दिवाकर के पिता ने भी कभी जिन्दगी में न की थी, वह दिवाकर ने अनायास ही कर डाली। उसने बाबा की आज्ञा का पालन करने से अपने को असमर्थ बतलाया। यह बात बाबू भवानीदीन जैसे पुरुष के लिये छोटी न थी। वे दिवाकर

की अतर्कित रुखाई पर जल कर खाक होने लगे।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले—तो अब तू बगैर स्वराज्य लिये न रहेगा, क्यों रे ?

दिवाकर चुपचाप सिर नीचा करके खड़ा रहा। बात का उत्तर न पाकर वे और भी क्रोधावेश में आ गये, बोले—बोलता क्यों नहीं है ? कांग्रेस से नाम नहीं कटायेगा ?

दिवाकर ने शान्त किन्तु दृढ़ भाव से उत्तर दिया,—अब तो मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

वे अपने क्रोध को संभाल न सके, चिल्लाकर बोले—अच्छा सुअर ! तो ले जा अपनी प्रतिज्ञा को। मेरा तेरा आज से कोई वास्ता नहीं। निकल जा मेरे घर से, और सब कपड़े उतार कर यहां रख दे।

दिवाकर का सारा शरीर अवसन्न हो गया। जिस बाबा के प्यार का अन्त नहीं था; उसके मुंह से वह ये शब्द सुन रहा था। क्या कभी उसने उनसे इस व्यवहार की आशा की थी, एक बार उसकी प्रतिज्ञा और दृढ़ता के बधन कमजोर मालूम पड़ने लगे थे। वह बाबा के सामने झुक कर क्षमा मांगना ही चाहता था कि स्वयं-सेवकों की एक टोली ने द्वार पर आकर ...त्मा गांधी का जय-घोष किया और दिवाकर को आवाज दी।

बाबू भवानीदीन पहले ही क्रुद्ध हो रहे थे। वे दिवाकर ...के हुए सिर पर एक चपत जमा कर बोले—चल निकल ...। जा कांग्रेस की भक्ति कर। वही तेरा पेट भी भर देगी।

दिवाकर आंखों में आंसू भर कर बाहर जाने लगा। चम्पा से न रहा गया। उसका मातृ-हृदय पुत्र की मनोव्यथा से क्षुब्ध हो गया। उसने रसोई-घर से पुकार कर कहा—दिवा! ओ दिवा! कहां जाता है? सुबह से कुछ खाया नहीं, भोजन तो करता जा।

दिवाकर ने तो कुछ उत्तर न दिया। बाबू भवानीदीन कर्कश स्वर में बोले—नहीं, नहीं, उसे जाने दे। अब कांग्रेस ही उसे खिलायेगी—और अगर तू नहीं मानेगी तो मैं तुझे भी घर से बाहर कर दूंगा। मैं इस तरह की जहालत का साथी नहीं हूँ।

दिवाकर चुपचाप द्वार खोल कर निकल गया। बाबू भवानीदीन ने बहू को समझाने के इरादे से कहा—तू डरती क्यों है बहू? अरे यह जायगा कहां! कहां खाने को रक्खा है? अभी भूख लगने पर लौट कर आ जायगा।—बगैर डांट-डपट के लड़के बिगड़ जाते हैं। काबू में नहीं रहते। तू घबड़ाना मत बेटी!

(४)

तेरह दिन हो गये दिवाकर ने लौट कर घर में कदम नहीं दिया। चम्पा रो रो कर घर भर रही थी, पर बाबू भवानीदीन और भी कठोर हो रहे थे। वे समझते थे कि आज नहीं तो कल दिवाकर आकर पश्चात्ताप करेगा ही।

दिवाकर पर जमने से पहले ही उड़ गया था, इसलिये उन्हें एक तरह पूर्ण विश्वास था कि यह अब आता है तब आता

की अर्जित कमाई पर जल कर खाक होने लगे।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले—तो अब तू बगैर स्वराज्य लिये न रहेगा, क्यों रे ?

दिवाकर चुपचाप सिर नीचा करके खड़ा रहा। बात का उत्तर न पाकर वे और भी क्रोधावेश में आ गये, बोले—बोलता क्यों नहीं है ? कांग्रेस से नाम नहीं कटायेगा ?

दिवाकर ने शान्त किन्तु दृढ़ भाव से उत्तर दिया,—अब तो मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

वे अपने क्रोध को संभाल न सके, चिल्लाकर बोले—अच्छा सुअर ! तो ले जा अपनी प्रतिज्ञा को। मेरा तेरा आज से कोई वास्ता नहीं। निकल जा मेरे घर से, और सब कपड़े उतार कर यहां रख दे।

दिवाकर का सारा शरीर अवसन्न हो गया। जिस बाबा के प्यार का अन्त नहीं था; उसके मुंह से वह ये शब्द सुन रहा था। क्या कभी उसने उनसे इस व्यवहार की आशा की थी, एक बार उसकी प्रतिज्ञा और दृढ़ता के बंधन कमजोर मालूम पड़ने लगे थे। वह बाबा के सामने झुक कर क्षमा मांगना ही चाहता था कि स्वयं-सेवकों की एक टोली ने द्वार पर आकर महात्मा गांधी का जय-घोष किया और दिवाकर को आवाज दी।

बाबू भवानीदीन पहले ही क्रुद्ध हो रहे थे। वे दिवाकर के झुके हुए सिर पर एक चपत जमा कर बोले—चल निकल यहां से। जा कांग्रेस की भक्ति कर। वही तेरा पेट भी भर देगी।

दिवाकर आंखों में आंसू भर कर बाहर जाने लगा। चम्पा से न रहा गया। उसका मातृ-हृदय पुत्र की मनोव्यथा से व्यग्र हो गया। उसने रसोई-घर से, पुकार कर कहा—दिवा! ओ दिवा! कहां जाता है? सुबह से कुछ खाया नहीं, भोजन तो करता जा।

दिवाकर ने तो कुछ उत्तर न दिया। बाबू भवानीदीन कर्कश स्वर में बोले—नहीं, नहीं, उसे जाने दे। अब कांग्रेस ही उसे खिलायेगी—और अगर तू नहीं मानेगी तो मैं तुझे भी घर से बाहर कर दूंगा। मैं इस तरह की जहालत का साथी नहीं हूँ।

दिवाकर चुपचाप द्वार खोल कर निकल गया। बाबू भवानीदीन ने बहू को समझाने के इरादे से कहा—तू डरती क्यों है बहू? अरे वह जायगा कहां! कहां खाने को रक्खा है? अभी भूख लगने पर लौट कर आ जायगा।—बगैर डांट-डपट के लड़के बिगड़ जाते हैं। काबू में नहीं रहते। तू घबड़ाना मत बेटी!

(४)

तेरह दिन हो गये दिवाकर ने लौट कर घर में कदम नहीं दिया। चम्पा रो रो कर घर भर रही थी, पर बाबू भवानीदीन और भी कठोर हो रहे थे। वे समझते थे कि आज नहीं तो कल दिवाकर आकर पश्चात्ताप करेगा ही।

दिवाकर पर जमने से पहले ही उड़ गया था, इसलिये उन्हें एक तरह पूर्ण विश्वास था कि वह अब आता है तब आता

हैं। पर वह न आया। एक दिन कचहरी से वापस आते हुए उन्होंने देखा कि एक विदेशी-वस्त्र की दुकान पर बहुत से स्वयं-सेवक झंडा लिये धरना दे रहे हैं। दुकानदार उन्हें धमका रहा है। आगे दूसरी दुकान पर तीन स्वयं-सेवक बुरी तरह पीटे जा रहे हैं। कहीं दिवाकर तो नहीं पिट रहा है। यह देखने के लिये वे झटपट वहां जा पहुंचे लेकिन तुरन्त ही वापस लौट पड़े और कहा—होता भी तो मुझे क्या! जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।

वे दिवाकर के व्यवहार को याद करके गुस्से में चुपचाप घर लौट आये, पर रात भर करवटें ही बदलते रहे। बार बार चौंक पड़ते थे। कहीं दिवाकर ही तो नहीं पिट रहा था? मैं क्यों लौट आया? वहां गया क्यों नहीं? उसने ऐसा भारी कसूर तो किया नहीं है।

दूसरे दिन इतवार था। कचहरी बन्द थी। बाबू भवानीदीन उसी सोच विचार में पड़े थे कि एक मुहल्ले का लड़का दौड़ता हुआ आया और बोला—बाबा, दिवाकर पकड़ा गया है! और भी कई स्वयं-सेवक गिरफ्तार हो गये हैं।

बूढ़े भवानीदीन अपना बिस्तर छोड़ कर खड़े हो गये—

?

उत्तर मिला—अभी-अभी। वे देखो इधर ही से कोतवाली जा रहे हैं।

बाबू भवानीदीन झटपट बाहर सड़क पर निकल आये।

सड़क लोगों से भरी थी। दोनों ओर से स्वयं-सेवकों पर फूल बरसाये जा रहे थे। बाबू भवानीदीन का हृदय एक प्रकार के उल्लास से गद्‌गद्‌ हो गया। दिवाकर का स्वागत देख कर वे मन ही मन फूल उठे। उन्होंने कभी उसके लिए ऐसे सौभाग्य की कल्पना न की थी। जल्दी से आगे बढ़कर उसकी पीठ ठोंकी और आशीर्वाद देकर कहा—बेटा डरना मत! तुम्हारा बूढ़ा बाबा भी तैयार होकर मैदान में आ गया है। जाओ, इसी तरह हसी-खुशी जेल में जाकर देश की स्वतन्त्रता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो। बाहर मैं तुम्हारा काम कर रहा हूँ।

दिवाकर को विदा कर वे झटपट कांग्रेस दफ्तर में पहुंचे और स्वयं-सेवकों में अपना लिखाकर दिवाकर के स्थान पर जा डटे।

"उम्मेद तो यही है—अगर वह अपने पिट्ठुओं को न ले आवे। मुझसे उन्होंने कहा था कि वे लोग न आ सकेंगे। उनके घर में शादी है।—पर अगर कहीं ....."

"नहीं, यह न करेगा। वह मेहरा को अपनी ही तरफ समझ रहे हैं।"

"हो सकता है।"—यह बातें करके मियां मिर्जा साहब और रघुपतिसहाय अपने खद्दर के कपड़ों को झाड़ पोंछ कर फिर लौट गए।

(२)

चेयरमैन साहेब नहीं आए! रघुपतिसहाय ने कार्यवाही आरम्भ करने की सलाह दी और मिस्टर मेहरा का नाम सभापति के लिए पेश किया। कई लोगों ने कहा—अजी, जरा सब्र कीजिये। चेयरमैन साहेब अभी आते हैं।

एक साहब ने उठ कर फोन किया मालूम तो हुआ—वे मकान से रवाना हो चुके हैं। बस, अब आते ही हैं।

फिर भी अब न तब। चेयरमैन साहेब का कहीं पता नहीं।

मियां मिर्जा ने अपनी खद्दर की शेरवानी का दामन हिला कर कहा—दोस्तो काफी इन्तजार हो चुका है। आनरेबल मेम्बरों वक्त इस कदर फालतू नहीं है जो चेयरमैन की सहूलियत इस बेदर्दी से जाया किया जाय। मिस्टर रघुपतिसहाय साहब तजवीज हमें पसन्द है, और उम्मेद है—

इसी वक्त मोटर सरसरा कर फाटक के सामने आ खड़ी हुई। राय साहब उछलकर कूद पड़े, अपने दो साथी सदस्यों के साथ अन्दर दाखिल हुये। देर के लिए माफी मांगी और अपने आसन पर आ बैठे।

रघुपतिसहाय और मिर्जा घबराहट में पड़ गए। राय साहब के साथ उनके दो साथी सदस्यों के आ जाने से उनका सारा यत्न विफल हो गया!

मुख्य विषय पेश हुआ। दोनों तरफ से खूब गर्मागरम बहस हुई। सारा कमरा सदस्यों की ओजस्विनी वक्तृताओं से गूंज उठा। इतनी सरगर्मी से बोर्ड की बैठक पहले कभी न हुई थी।

मामला वोट पर रक्खा ही जाने वाला था कि अचानक बोर्ड के एक सदस्य मिस्टर शीतलप्रसाद निगम बार-एट-ला का मृत्यु समाचार सुन पड़ा। रघुपतिसहाय ने इस दुखद संवाद को सुन कर तुरन्त कार्यवाही स्थगित कर देने का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। सारी सभा की खामोशी ने आप ही उसका समर्थन और अनुमोदन कर दिया। उस दिन कार्यवाई स्थगित होकर, मामला अगले दिन के लिए टल गया।

(२)

राय साहब रामकिशोर की हवेली के सामने समाचार पत्र का फेरी वाला, बड़े जोर से आवाज लगा रहा था—'चुंगी में

देश-द्रोहियों का जमघट, राष्ट्रपति की गिरफ्तारी पर हड़ताल न मनाई जा सकेगी।

अन्तःपुर में चिक की आड़ में दो आंखें झलमलाईं। मालूम पड़ा वह बेसुरी कर्कश आवाज किसी के कानों में खटक गई। द्वार खुला एक दासी निकली और एक अखबार खरीदकर अंचल में छिपा ले गई। कारण ? हिन्दी के पत्रों का उस दरबार में प्रवेश न था। बड़े सरकार की मेज पर अंग्रेजी के अखबार ही शोभा बढ़ाया करते थे। पढ़ने की तो फुरसत किसे थी, पर जब से एक आध बार किसी में सरकार का नाम राजाओं की लिस्ट में छप गया था, तबसे बराबर वे चले ही आते हैं। कभी उनकी वी० पी० वापस नहीं होती।

दस बजे भोजन की थाली सामने आ गई। चुपचाप रूखे होठों पर मीठी मुस्कराहट का नाम न था। आभूषणों की चपल चंचल झनकार जान बूझकर संयत की गई थी। कोप की मीठी झिड़की स्पष्ट थी—रूठने का मधुर भाव इशारों में मूर्तिमान था।

राय साहब मर्ज जल्दी भांप लेते थे और उसका अचूक इलाज भी जानते थे। चुपचाप दो एक बार चखकर थाली हटा दी, कहा—सिर में कुछ दर्द सा है। खाने को जी नहीं करता है।

उठ खड़े हुए, पर किसी ने हाथ न पकड़ा। जबरदस्ती नहीं की। भयभीत हरिणी का भाव दिखाकर सुगन्धित तेल मलने दा॰

अनुरोध नहीं किया। स्वाभिमान के भाव को लेकर वे लेट तो रहे पर मन ही मन सोचते रहे—आखिर बात क्या है? यह जिद तो साधारण नहीं समझ पड़ती।

प्रतिरोध प्रतिपक्षी को झुकने से रोक देता है और सरल मौन एक तरह से विवश कर देती है. राय साहब से रहा नहीं गया। बहूरानी का अञ्चल खींचकर पूछा—यह क्या तमाशा कर रक्खा है?

तमाशा तो तुम्हीं करना जानते हो। हम लोग घर में परदे और दीवारों के अन्दर उसका हाल क्या जानें?

तब?

तब जो बात मुझे पूछनी चाहिये थी, वह मुझ से पूछी जा रही है।

आखिर क्या?

यही कि, यह क्या तमाशा कर रक्खा है??

कौन सा? किस बाबत?

रामेश्वरी ने कुछ जवाब न देकर वही समाचार पत्र खोलकर सामने रख दिया। राय साहब ने शीर्षक दो-तीन बार देखा, गुनगुनाए—पाजी, बदमाश कहीं के, मुकदमा चला दूंगा। सब होश दुरुस्त हो जायेंगे।

रामेश्वरी—(उनके दोनों हाथ पकड़ कर) यह सब क्यों करोगे? जब सब लोगों की राय है तो तुम्हीं क्यों रोकते हो।

मनाने दो कल हड़ताल, तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? उस दिन यहीं रहना, ताश खेलेंगे ।

रायसाहब ने हाथ छुड़ाकर हंसते हुए कहा—तुम नहीं समझती । उत्तरदायित्व तो सारा मेरे ऊपर है । कलक्टर साहब को क्या मुंह दिखाऊंगा ? मैं चेयरमैन बना रहूँ और देश भक्ति के पौधे को खाद पानी यहीं से मिलता रहे यह कैसे हो सकता है ?

रामेश्वरी—फिर व्यर्थ की बात ! हर मामले में सरकार का डर ? सरकार की रक्षा के लिये तो तुम नामजद हुए नहीं, वहां तो जनता की राय का ही आदर करना है । अतः सब लोग जो कहें, वही क्यों नहीं होने देते ?

रायसाहब—यह नहीं हो सकता । तुम क्या जानो इन बातों को, चुपचाप घर में बैठी रहो । अगर मैं इसी तरह चलता तो आज रायसाहब न होता ।

रामेश्वरी—लोकमत की आवाज बड़ी है या राय साहबी इस पर आप जरा विचार तो करें । मेरी निगाह में तो गौरव लोगों के साथ रहने में ही है ।

रायसाहब—तुम पढ़ी हो पर गुनी नहीं । दुनियां में 'आदर्श' और 'गौरव' सिर्फ किताबी शब्द हैं, व्यवहार में उनका उपयोग ...। की निशानी है । यहां तो वही रह सकता है जो दूसरों ...से ठल कर आगे बढ़ सकने की क्षमता रखता हो ।

रामेश्वरी ने खिन्न और उदास भाव से कहा—तुम जानो। मेरी समझ से तो तमाम लोगों की इच्छा को जरा से स्वार्थ पर बलिदान कर देना ही दुर्बलता है—पर जाने दो ! तुम्हारे जी में आवे वह करना।

(४)

बोर्ड की स्थगित मीटिंग फिर आरम्भ हुई। रघुपतिसहाय की तरफ के सभी सदस्य उपस्थित थे और रायसाहब ने भी अपना बहुमत बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा था।

एक बार फिर पूरे जोश के साथ विवाद आरम्भ हुआ। वक्तृताओं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि, कुछ इधर के सदस्य उधर हो गये और उधर के इधर। मामला किसी तरह तय होता दिखाई ही न देता था।

दोनों पार्टी अपनी-अपनी जिद पर डटी थीं। उनके जरा भी हिलने की संभावना न थी। एक तरफ के सदस्य हड़ताल के नाम से ऐसे ही बिदकते थे, से बावला कुत्ता पानी से और दूसरे पक्ष के लोग उस दिन नगर की हड़ताल के साथ चुंगी की और उससे सम्बधित सब स्कूलों और संस्थाओं में भी हड़ताल करना चाहते थे।

आज चेयरमैन साहब शुरू से आखिर तक यही भाव दिखा रहे थे कि दोनों पक्षों में कुछ समझौता हो जाय। क्योंकि आज जीत की आशा न थी। उनकी संभावना के बिलकुल प्रतिकूल

मिस्टर मेहरा ने बड़े जोर से रघुपतिसहाय का समर्थन किया था। उनके कारण और भी कुछ लोग फिरते नजर आये।

समझौते की कोई सूरत न देखकर उन्होंने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं नहीं चाहता कि मामला वोट पर आने पावे। सब लोग चाहें तो हड़ताल रहे। बस, आप लोग मतैक्य कर लीजिये।

लेकिन कुछ न हुआ। वोट ही अन्तिम उपाय रह गया, पर संयोग तो देखिये, मत भी बराबर ही आये। जल्दी समाप्त करने का यत्न किया, पर जल्दी न हो सकी। सब लोगों की दृष्टि चेयरमैन के ऊपर आकर ठहर गई। रघुपतिसहाय आज बराबर चेयरमैन के विवश भाव को देख-देख कर उत्साहित हो रहे थे। उन्हें कुछ निश्चय सा हो रहा था कि, चेयरमैन मत देते समय कम से कम अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रक्खेंगे। सब की आंखें कुछ देर के लिये उसी ओर लग गईं।

चेयरमैन ने एक-एक शब्द तोल कर कहा—आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। मेरा मत अब तक नहीं बदला है। मैं हड़ताल का समर्थन किसी तरह नहीं कर सकता। कोई नई बात न थी। इसी की सबको आशा थी। शर्म शर्म के साथ बैठक क्या पटाक्षेप हुआ।

दोपहर को बहूरानी के दिमाग का पारा कुछ-कुछ चढ़ गया था उसे उतारने की गरज से और अपनी विजय की सूचना देने के लिए रायसाहब उस दिन जल्दी ही अन्तःपुर में जा पहुंचे। लेकिन वहां रामेश्वरी न थी। उन्होंने शयन-गृह में तलाश किया पर वह दिखाई न दी। वे दरवाजे से निकलने लगे तो सामने एक कागज इस तरह से रक्खा गया था कि जबरदस्ती उस पर नज़र पड़ जाय। रायसाहब ने उसे उठाया, देखा, तो स्तम्भित खड़े रह गये।

रामेश्वरी उन्हीं के लिए वह पत्र रख गई थी। उसमें लिखा कि—"मुझे क्षमा करना मेरे प्यारे! रामेश्वरी अपने स्वामी को देश-द्रोही कहलाते नहीं देख सकती। वह उसका प्रायश्चित करेगी। देश प्रेम कौटुम्बिक प्रेम से ऊंचा है। बचपन से यही विचार उसके साथ-साथ हिंडोले में झूलकर पड़ा हुआ है। देशभक्ति उसके लिये एक ऐसी कला हो गई है, जिसके बिना सौंदर्य की सृष्टि हो ही नहीं सकती—सत्य को जगाया ही नहीं जा सकता।

"आप मेरे लिये चिन्तित न हों। ईश्वर करे चिन्ता का अवसर ही न आवे। वह मेरे अस्पष्ट और अधूरे से शब्दों से ही मेरी इच्छा की व्याख्या आप के निकट कर दे। आप उसे स्वीकार करें—फिर, फिर रामेश्वरी आपके चरणों के निकट ही है।"

रायसाहब को मालूम पड़ा जैसे संसार एक विपरीत दिशा की ओर बड़े वेग से जा रहा है। रामेश्वरी ही एक वह दिव्य देवी है जिसे उन्होंने आशा और प्रेम के मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था उनके हृदय और आत्मा के एकान्त स्थान में वही विराजमान थी। किसी की वहां तक पहुंच न थी, सरकार की अपूर्व भक्ति भी उस निभृत और परम पवित्र स्थान में आश्रय न पा सकी थी। वे मर्माहत हो गये। एक कुर्सी पर बैठ गये। उन्हें ऐसा लगा कि वे किसी तरह रामेश्वरी के मूल्य पर राज्य भक्ति नहीं खरीद सकते!

(९)

तमाम समाचारपत्रों के कालम चेयरमैन की निन्दा से भरे थे। उन्होंने अपने वोट के अधिकार से सारे नगर में खलबली मचा दी थी। शाम को आम सभा हुई, उसमें चेयरमैन साहब का भी नाम आया। रामेश्वरी वहीं उपस्थित थी, अपने स्वामी के प्रति कई वक्ताओं की निन्दाजनक उक्तिओं को सुनकर शर्म से उसकी गर्दन झुकी जाती थी। उसके पास बैठी हुई देवियां बराबर उसकी ओर ताक रही थी। अगर उस समय रामेश्वरी को धरती जगह दे देती तो वह उसी में समा जाती।

इसी समय एक तरफ से कुछ शोर गुल सा सुनाई दिया। कुछ लोग जोर-जोर से महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और

भारत माता की जय के नारे लगाते हुए सभा-स्थल की ओर आ रहे थे। सब की निगाह उधर ही उठ गई। पन्द्रह बीस लोगों का एक जुलूस वहां आ पहुंचा। सब लोग खद्दर से वेष्ठित थे और राष्ट्रीय गान गाते आ रहे थे। सब से आगे वाले व्यक्ति के हाथ में राष्ट्रीय झण्डा था। लोग आश्चर्य-चकित दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे। स्टेज पर बैठे हुए लोगों ने खड़े होकर वाहवाही के साथ उन्हें लिया और स्टेज पर लाकर जगह दी।

रामेश्वरी आश्चर्य और हर्ष के आंसू बहाते हुए उस नवीन देश-भक्त की ओर देख रही थी। उसे बहुत देर तक अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। सभापति ने नपे-तुले शब्दों में कहा—भाइयो, आज हमारी विजय का श्री गणेश हुआ है। आगत व्यक्ति हमारे सहयोगी श्री रामकिशोरजी हैं। आप रायसाहबी और चेयरमैनी को ठुकरा कर हमारे हृदय के सिंहासन पर आसीन हो गये हैं। आपने चुंगी के चेयरमैन की हैसियत से सरकार का पक्ष समर्थन किया था। अब उसे त्यागकर अपने भाइयों के साथ सत्य का पक्ष लेने को आ पहुंचे हैं। हम आपका स्वागत करते हैं।

इस वक्तृता से सभा में जय जयकार का तुमुल नाद गूंज उठा। लोगों ने फूलों के हार से रायसाहब रामकिशोर को ढक दिया। रामेश्वरी की आंखों से आंसू का तार बंध गया।

रामकिशोर ने मंच पर खड़े होकर कहा—इस गुलाम को मंच पर लाने वाली का एक बार आप लोग जयघोष करें यही मेरी कामना है।

दूसरे ही क्षण रामेश्वरी दोनों हाथ बांधे मंच पर खड़ी थी, और जनता में उसकी जयकार गूंज रही थी।

★

अपूर्व दान

उन दिनों प्रभात की लाली के साथ स्वयंसेवकों की टोलियों के राष्ट्रीय गान से शहर की गली-गली प्रतिध्वनित हो उठती थी। पक्की तङ्ग गलियों में केशरिया वस्त्र पहने हुए नवयुवकों की गंभीर ध्वनि से मकान झनझना उठते थे। सोनेवाले जाग पड़ते थे। स्त्रियां झरोखों से सिर निकालकर उन देश-प्रेम के मतवाले सिपाहियों की विजय कामना किया करती थीं।

एक दिन इसी तरह के प्रातःकाल कांग्रेस दफ्तर से स्वयंसेवकों का एक दल निकलकर चला। वह सदर बाजार से होकर एक विशाल महल के फाटक पर जा पहुंचा। यह नित्य का रास्ता था। यहीं से स्वयंसेवकों की प्रत्येक टोली गुजर कर शहर के अन्य भागों में जाती थी। यह विशाल महल नगर के एक प्रसिद्ध धनपति का निवासस्थान था। जिनको यह सब पसन्द न था। कांग्रेस के तमाम कार्यक्रम को वे महज खुराफात समझते थे। उन्होंने कई बार कोशिश की कि कांग्रेस का दफ्तर किसी दूसरी जगह चला जाय पर कुछ फल न हुआ। यहां उनका

धन, उनकी आनरेरी मजिस्ट्रेटी कुछ भी न कर सकी। उन्हें हर समय यही भय लगा रहता था कि जब उनके यहां कोई सरकारी अफसर मौजूद हो उस समय स्वयंसेवक हुल्लड़बाजी न करने पावें। इसी के लिए उन्होंने अपने खास आदमियों को कांग्रेस में भर्ती करा दिया था कि वे वहां के कार्यक्रम की खबर देते रहा करें ताकि उसी के अनुसार वे सरकारी अफसरों से मिलने का समय निश्चित किया करें। अक्सर तो वे शहर के बाहर अपने बगीचे में ही रहते और अफसरों से मुलाकात करते थे।

उस दिन ज्योंही स्वयंसेवकों के दल ने पहुंचकर 'वन्देमातरम्' और 'अल्ला हो अकबर' की आवाज लगाई, त्योंही अनाड़ी मजिस्ट्रेट साहब का रक्त ठंडा होकर शरीर की नसों में जम गया, क्योंकि वे उस समय अपने प्रदेश के हाई कमिश्नर साहब की मेहमानी में लगे हुए थे। वे एक मिनट के लिए क्षमा-प्रार्थना करके झटपट बाहर निकल आये और मुसाहबों, नौकरों तथा चपरासियों पर उनकी लापरवाही के लिए आग बबूला हो उठे। ठीक इसी समय एक बार फिर बाहर से महात्मा गांधी का जयघोष तेज बर्छे की तरह उनके कानों में घुस गया! उनका दिल धड़क उठा। गुस्से से सिर घूमने लगा। वे खुद ही सदर दरवाजे की ओर बड़े वेग से भागे।

फाटक पर सुशीला, मजिस्ट्रेट साहब की तेरह वर्षीया पुत्री, स्वयंसेवकों का स्वागत कर रही थी। जो हार कमिश्नर साहब को पहनाने के लिये तमाम बगीचे के फूल चुन-चुनकर बनवाया गया था उसे उनके पहुंचने से दो मिनट पहले सुशीला टोली के नायक के गले में डाल चुकी थी, और वह सुशीला को सम्बोधन करके कह रहा था—बहन ! केवल फूलों की भेंट से देश का हित नहीं होगा। इस समय प्रत्येक बहन से हमारी यह प्रार्थना है कि वह हमें अपने भाइयों का सहयोग प्रदान कराये;—इस समय मैं सतीश को चाहता हूँ। उसके बिना हमारी शक्ति अपूर्ण है, और जिस विजय की आकांक्षा हमारे हृदयों में है वह उसके बिना पूरी नहीं हो सकती। इस समय बहनों से भाइयों की, स्त्रियों से पतियों की और माताओं से पुत्रों की याचना करने के लिए ही हम निकले हैं।

सुशीला कोई उत्तर न दे पायी थी कि मजिस्ट्रेट साहब बाघ की तरह गरज कर वहां जा पहुंचे। उन्हें देखते ही स्वयंसेवकों ने निर्भीक भाव से वन्देमातरम् की आवाज लगाई। मजिस्ट्रेट साहब का गुस्सा काबू से बाहर हो गया। वे पास पड़ी हुई लकड़ी लेकर उस टोली पर टूट पड़े और बहुत दिनों के भूले हुए पटेबाजी के दो चार हाथ दिखाये। इस तरह दल

उन्होंने सिर हिलाकर, संदेशवाहक को वापस कर दिया, और चुपचाप स्थिर भाव से सोचने लगे—सुशीला को यह खुराफात सूझी कैसे ? जरूर उसे किसी ने बहकाया है। वह भोलीभाली बच्ची। वह क्या जाने देश-भक्ति क्या बला है ?—आखिर भय से बीमार पड़ ही गई।

दूसरी नौकरानी ने आकर इत्तला दी—बीबीजी की तबियत खराब है, सरकार !

इस बार वे उसे लौटा देने का साहस न कर सके। खबर के साथ ही एक अचिन्त्य विपत्ति से मन ही मन भयभीत होकर दासी के पीछे पीछे अन्तःपुर में जा पहुंचे।

सुशीला की हालत अच्छी नहीं थी, वह बिस्तर पर छटपटा रही थी। उसकी बेचैनी का असर सुशीला की मां के चेहरे पर झलकता दिखाई देता था, किन्तु उधर देखने का साहस मजिस्ट्रेट साहब को न हुआ। वे चुपचाप उसके मस्तक पर हाथ रखकर शरीर की गर्मी देखने के बहाने अपने मन का भाव छिपाने की चेष्टा करने लगे।

सतीश के साथ डाक्टर आया। उसने रोगी की परीक्षा करके बतलाया—हृदय पर कोई भारी सदमा पहुंचा है।

पिता का गला यह सुनकर इतना भारी हो गया कि प्रयत्न करने पर भी वह अपनी दीनता उसके सामने प्रकट न कर सके।

दिन-रात दवाइयों का उपचार होने लगा, पर ज्वर की तेज़ी किसी तरह कम न होती थी। एक दिन, दो दिन—एक हफ़्ता हो गया, रोगी उत्तरोत्तर संकट के समीप जाता हुआ प्रतीत होने लगा।

मजिस्ट्रेट साहब मन ही मन दुखित होते और आंसू बहाया करते। वे सदा सुशीला की चारपाई के पास बैठे रहते थे।

(४)

रात के तीन बजे थे। सुशीला की मां, सतीश को मजिस्ट्रेट साहब ने आश्वासन देकर सोने भेज दिया था। आप आराम कुर्सी पर चारपाई के पास बैठे हुए थे। एका रोगी की बेचैनी बढ़ती हुई समझ पड़ी। पिता ने अपना हाथ उसके मस्तक पर रक्खा। एकाएक सुशीला जैसे चौंक गई। उसने उसी बदहवाशी की दशा में आंखें खोल दीं और कहा भय्या! मैंने तुम्हें देश के काम के लिए दे दिया है। पिताजी की बात न मानना, खूब देश का काम करना। बहिन की बात नहीं मानोगे क्या? भैया, सतीश बोलते नहीं?

पिता की हिचकी बंध गई। वह बालकों की तरह लगे। सुशीला का हाथ अपने हाथ में लेकर उन्होंने कहा मेरी रानी बेटी! सतीश को तुमने देश के लिये दे दिया

तुम्हारी इच्छा में बाधा न डालूंगा, लेकिन अपने क्रूर पिता के कोमल-भावों का संहार करने के लिये तुम तो उसके पास रहोगी न ? बोलो, बोलो, सुशीला बेटी !

वे निस्तब्ध रात्रि में चिल्लाते रहे ।

उन्हें कोई उत्तर न मिला, शेष रात्रि की नीरवता अनंत-रूप से उसी तरह व्याप्त रही ।

दिन-रात दवाइयों का उपचार होने लगा, पर ज्वर की तेजी किसी तरह कम न होती थी। एक दिन, दो दिन—एक सप्ताह हो गया, रोगी उत्तरोत्तर संकट के समीप जाता हुआ प्रतीत होने लगा।

मजिस्ट्रेट साहब मन ही मन दुखित होते और आंसू बहाया करते। वे सदा सुशीला की चारपाई के पास बैठे रहते थे।

(४)

रात के तीन बजे थे। सुशीला की मां, सतीश सबको मजिस्ट्रेट साहब ने आश्वासन देकर सोने भेज दिया था। केवल आप आराम कुर्सी पर चारपाई के पास बैठे हुए थे। एकाएक रोगी की बेचैनी बढ़ती हुई समझ पड़ी। पिता ने अप
उसके मस्तक पर रक्खा। एकाएक सुशीला जैसे
उसने उसी बदहवाशी की दशा में आंखें खोल द
भय्या! मैंने तुम्हें देश के काम के
पिताजी की बात न मानना, खूब
बहिन की बात नहीं मानो
नहीं?

पिता की हिचकी
लगे। सुशीला का
मेरी रानी

तुम्हारी इच्छा में बाधा न डालूंगा, लेकिन अपने क्रूर पिता में कोमल-भावों का संचार करने के लिये तुम तो उसके पास रहोगी न ? बोलो, बोलो, सुशीला बेटी !

वे निस्तब्ध रात्रि में चिल्लाते रहे ।

उन्हें कोई उत्तर न मिला, शेष रात्रि की नीरवता अभंग-रूप से उसी तरह व्याप्त रही ।

खाली हाथ

अपनी श्रीमतीजी कुछ ऐसी असाहित्यिक हैं कि जब लिखने बैठो तभी छेड़छाड़। दूसरी तरफ यह भी कहना पड़ता है कि बड़ी साहित्यिक हैं। वाग्विलास का सब आनन्द खुद ले लेती हैं। कागज के पन्ने पर कुछ छलक न पड़े, इसी की ताक में रहती हैं।

रात को एक अधूरी कहानी लेकर बैठा था। सोचने में जरा जी लगाया था, कि आ धमकी। पूछने लगीं—"बादाम भिगो दूं—बादाम ? नहीं सुना ?"

भावों की माला टूट कर बिखर पड़ी। मैंने कुछ यों ही होकर कहा—"भिगो दो—भिगो दो। ऐसा भिगाओ कि सात दिन तक भीगती रहें। फिर पीसो—ऐसा पीसो कि काजल बन जायें, और तब हलवा बनाओ, ऐसा कि जिसे खुद ही खाती और खुद ही सराहती जाओ।"

सिर उठाया, तो देखा उनके चेहरे का रंग गायब। मैंने मुस्करा दिया। वे लजा गईं। बोलीं—"क्या रोज रोज ?"

बात काटकर मैंने कहा—"हां, ठीक वैसा ही।"

वे—"अच्छा, जाओ। जरा सी बात पकड़ कर इधर-उधर भुलाते हो।"

मैं—"तो राम राम।"

वे कुछ कुछ खिमककर—"हां, रात भर के लिए राम-राम।" बस, गोद में लिया बच्ची को और छम-छम,—जा दाखिल हुईं अपने कमरे में।

मैंने उठाया फाउन्टेन और बैठा कुछ लिखने कि बाहर की कुंडी पिटी। मैं चुप, कुछ झुंझलाहट से, कुछ क्रोध से, कुछ परेशानी से और कुछ बच्च मूर्खा पड़ोसिनों के स्वभाव से, जिन्हें समय असमय की परवाह नहीं—बस, काता और ले दौड़ीं। किसी ने छींका तो, जम्हाई ली तो, हिचकी आई तो—किस्सा कोताह, छोटी से छोटी बात हुई नहीं कि बस मेरा घर। नाई, धोबी, चमार, जुलाहा, वैद, हलवाई, मोदी, सिपाही, प्यादा सबका झगड़ा मेरे सिर। देश का मुर्दा और नानामऊ का घाट; पर इस सबकी बानीमुबानी थीं अपनी श्रीमती ही। तमाम मुहल्ले के महिला-मंडल का संचालन उनके हाथ में था। इससे बच्चे को तकलीफ होती थी। मुझे तकलीफ होती थी। नौकरानी परेशान रहती थी। बाजार जाती तो इसकी-उसकी, जिसकी-तिसकी चीजें ढो लाती। किसी को आग पहुंचा देना, किसी का सिर गूंथ देना, किसी के बच्चे के लिए खिलौने वाले को बुला देना, किसी की घरेलू शिकायत सुनकर हां-में-हां मिला देना—यह सब करते-करते

पानदान तलाश करना तो दूर रहा अपने आपको आसानी से बाहर निकाल लाना कठिन था। मैं चिल्लाया। धक्के दिये। हाथ मारे, पैर पटके गली न मिली। असबाब बाहर से लोग फेंक ही रहे थे, और खिड़की से घुसते आते थे कि गाड़ी ने सीटी दी। मैं छटपटाया। एक-दो के सिरों को लड़ा दिया। एक-दो को कुचल डाला पर व्यर्थ। गाड़ी भक भक करके रेंगने लगी। तब भी मैंने कोशिश की पर कुछ न हुआ। जी में आया कि जंजीर खींच दूं, पर वहां तक हाथ पहुंचे तब न। तब गाड़ी सर्राटे भरने लगी। डिब्बा ठसाठस भरा था कि एक स्टेशन तक मैं बिना हिले-डुले चला गया। पूरे तीस मिनट में स्टेशन आया। तब तक मेरा कचूमर निकल गया।

गाड़ी खड़ी हुई कि टिकट चेक किया जाने लगा। देखा तो सब के सब थर्ड का टिकट लिए हुए। एक एक खींच खींचकर निकाला जाने लगा। मुझे दुष्टों पर कितना गुस्सा आ रहा था, सोच सकते हो। खाली एक कमीज बदन में डाले साढ़े ग्यारह बजे अकेला गाड़ी में आ फंसा था। अब घर लौटूं तो कैसे? उतर पड़ूं तो क्या करूं? आगे चला चलूं तो तीन बजे इलाहाबाद पहुंचूंगा। वहां से पांच बजे एक्सप्रेस मिलेगा; पर रात भर एक कमीज में कैसे काटूंगा? कार्तिक है, रात भीगने पर कितनी ठंडी हो जाती है?

आधे से ज्यादा लोग उतार दिये गये, तब जान में जान आई। शरीर को हिलाडुलाकर सुस्ताने का मौका मिला। अब

मेरा नंबर आया, पर मैं टिकट क्या दिखाऊं ? मैंने अपनी-बीता सुनाकर बाबू को विश्वास दिलाया। सज्जन था, मान गया। अब पूरी तरह से अपने को चारों तरफ से बटोरकर काम में लगाने का यत्न किया। पानदान की तलाश की, और अब तक जिसे नहीं देख पाया था उसकी ओर भी नजर डाली। अर्धरात्रि की प्रगाढ़ नीरवता बाहर से क्षुब्ध होने पर भी भीतर पैर पसार कर घनीभूत हो रही थी। भाई साहब ने जिस सीट का संकेत किया था, उसके पास मैं प्रयास करके पहुंचा। एक तीन साल का बच्चा सो रहा था। पास ही एक स्त्री बैठी थी, विचारलीन, बेखबर। उसका मुंह बच्चे की ओर था। शायद उसके हृदय के स्पन्दन गिन रही थी। मेरी परछाईं ने जब बालक के मुख पर पड़ते हुए प्रकाश को रोक दिया तो उसने मुंह फिराकर एक बार मेरी ओर देखा। मुझे लगा कि उसकी दृष्टि को मैं सह नहीं सकूंगा। उसने भी शायद मेरी असमर्थता को समझ लिया और अपनी दृष्टि हटा ली। मैं पीछे हटकर एक संकुचित स्थान पर बैठ गया। मुझे साहस न हुआ कि उसके पास जाकर पानदान तलाशूं, या उससे पूछूं।

गाड़ी वायुवेग से जा रही थी। मेरे शरीर में शीत से झुरझुरी आने लगी। अगली स्टेशन पर उतर पड़ूंगा। पास ही एक परिचित का मकान है। उन्हीं के यहां आधी रात को अवाञ्छित मेहमान बनूंगा, पर वहां पहुंचने में अभी पैंतीस

मिनट की देर है, और इधर सरदी से रोम-रोम थरथराने लगा है। दोनों हाथों को छाती पर जोर से दबाकर मैं सरदी भगाने की चेष्टा में था, पर वह दुष्टा और भी कठिनतर होकर मुझे विकंपित कर रही थी।

जिसकी भेदक दृष्टि से अपने को सुरक्षित करके मैं एक ओर दुबके रहने की चेष्टा कर रहा था, उसीने बहुत निकट का रिश्ता स्थापित करते हुए मुझसे कहा—यों शीत क्यों खा रहे हो भाई ? यह लो चादर। मैं जवाब भी न दे पाया और चादर मेरी गोद में आ गिर पड़ी।

एक बाला का आग्रह, मैं इनकार न कर सका। उपहार की तरह उसे शरीर पर डाल लिया। स्वस्थ होकर मैंने कहा—बहिन जी, इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।—"पर आप अपने शरीर के साथ इस तरह अन्याय करके मेरी रक्षा करें यह न होगा"-कहकर मैं चादर वापस देने का प्रयत्न करने लगा।

उत्तर मिला—"नहीं नहीं इस शिष्टाचार की क्या जरूरत। मेरी फालतू चादर थोड़ी देर आपके काम आ जाय तो कोई हर्ज नहीं।"

मैंने चादर को बड़े यत्न से लपेट लिया, वापस नहीं किया। उस असह्य तीखी दृष्टि वाली बाला के कंठ में न जाने क्या जादू था, जिसने मुझे परवश कर दिया। एक परम आत्मीयता का भाव मुझे चारों ओर से घेरने लगा।

स्टेशन आई। मैं उतरने से पहले चादर को सधन्यवाद वापस कर देता, पर कहां कर सका। चादरवाली को भी तो वहीं उतरना था। मैं उतरा वे उतरीं, सोते हुए बच्चे को गोद में लेकर। भाभी का'भानदान मुझे फांसी बन गया था। अपरिचिता की चादर अपमान का भार।

उनके उतर कर खड़े होते ही एक वयस्क पुरुष वह आगये। हाथ में छड़ी, नाक पर चश्मा। चश्मे के भीतर दो चमकीली आंखें। माथे पर पसीना। चेहरे पर पद-मर्यादा का रोब। साथ में एक नौकर। नाम बजरंगबली। काम में मुस्तैद, परन्तु बातूनी। वृद्ध ने आते ही कहा—गायत्रीदेवी!

हां मैं आगई—बच्चे को संभालते हुए गायत्री देवी ने उत्तर दिया। मुझे भी पहली बार अपरिचिता के नाम का पता चला।

वृद्ध नौकर से बोले—देखो बजरंगबली तुम सामान के साथ आओगे।

बजरंगबली ने सिर हिला कर स्वीकृति जताई।

बजरंगबली कुली की मदद से सामान उतरवाने लगा। मैं शरीर पर चादर डाले पास ही खड़ा था। वहीं खड़ा रहा। वृद्ध ने गायत्री देवी से कहा—आप आज न आतीं तो ठीक न होता।

नहीं ही आती, परन्तु आखिर आ गई—[illegible]ी बोली।

अच्छा किया—कहकर वृद्ध ने अपनी नाक पर का खिसका हुआ चश्मा ठीक किया।

गायत्री देवी—देखिये वकील साहब, मुझे तो उनका कुछ नहीं चाहिए।

ये बच्चों की सी बातें हैं—वृद्ध वकील ने समझाया।

गायत्री देवी—तो और भी अच्छा है। मैं तो बच्चा ही रहना चाहती हूँ।

वृद्ध वकील—अच्छा चलो तो सही।

गायत्री—चलिए।

वे दोनों आगे-आगे और मैं उनके पीछे-चल पड़ा। चलते-चलते मैंने देखा कि बजरंगबली ने सामान के साथ एक पानदान भी डिब्बे में से निकाल लिया। निश्चय था कि पानदान भाभी का था जिसके लिए मैंने इतना कष्ट उठाया था। शायद अब तक वह कहीं सामान के नीचे दबा पड़ा था। परन्तु पानदान देखकर भी इस समय साहस न हुआ कि मैं उसे उठा लेता और कह देता कि यह मेरा है। इसी को लेने तो मैं आया था।

गायत्री थोड़ी दूर चलने के बाद ठिठक कर खड़ी हो गई। मैं उससे कुछ ही दूरी पर धीरे-धीरे चल रहा था। मुझे लक्ष्य करके वह बोली—आप चादर की चिन्ता न करें। सवेरे मेरे स्थान पर भिजवा दें। यह रहा मेरा पता।

उसने एक छपा हुआ कार्ड मुझे दे दिया। कार्ड पर लिखा था डाक्टर हरवंशराय एल. एम. एस., अमीनाबाद, लखनऊ। कार्ड ले लिया और धन्यवाद के दो शब्द कहकर ठिठक

गया। गायत्री के प्लेटफार्म पार कर जाने पर मैं धीरे-धीरे बाहर गया।

रात अपने परिचित मित्र के यहां बिताकर मैं सवेरे चादर लेकर डा० हरवंशराय के घर गया। घर क्या था एक आलीशान इमारत थी। परन्तु कहीं चहलपहल नहीं थी। सारा घर जैसे सुनसान पड़ा हो। एक लड़की से जो भीतर जा रही थी मैंने खबर कराई। दो मिनट बाद गायत्रीदेवी ने मुझे भीतर बुला लिया। मैं गया। मेरा अनुमान सच निकला। सारी हवेली खाली पड़ी थी। उसके कोने के कमरे में कुछ कुर्सियां और एक पलंग पड़ा था। पलंग पर एक वयस्क पुरुष बीमार पड़े थे। सांस की बीमारी ने उसे बेबस कर दिया था। चेहरे पर झांई पड़ रही थी। पलंग के पास ही एक कुरसी पर गायत्रीदेवी बैठी थीं। बच्चा एक शेल्फ को पकड़ कर खड़ा था और बड़ी-बड़ी किताबों से खेल रहा था।

मुझे देखकर गायत्री ने मेरा स्वागत करते हुए कहा—आप आगये, आइये।

मैं एक कुर्सी लेकर बैठ गया। गायत्री ने परिचय कराते हुए रोगी की ओर इशारा करके कहा—ये मेरे पतिदेव हैं।

फिर अपने पतिदेव से बोली—ये कल मेरे साथ ही आये हैं।

रोगी पतिदेव ने कुछ शंकित दृष्टि से मुझे देखा। मैंने उससे अपना बचाव करने का यत्न न करते हुए कहा—और यह

भी कहिये कि आपने किस प्रकार मुझे सर्दी से बचाया ।

यह भी कोई कहने की बात है—गायत्री बोली ।

मैंने चादर टेबिल पर रख दी और कहा—इसके लिए अनेक धन्यवाद ।

इसी समय रात वाले वृद्ध वकील साहब खांसते हुए बाहर से प्रविष्ट हुए । मुझे कमरे में बैठे देखकर वे भी कुछ सकुचाये पर प्रकट नहीं होने दिया । रोगी ने उठने का विफल प्रयत्न करते हुए कहा—आइये वकील साहब ।

वकील साहब—आप ठीक तो हैं ?

रोगी—जैसा ठीक हूँ, आप देख ही रहे हैं ।

वकील साहब—आप तो डाक्टर हैं । आप इस विषय में मुझसे अधिक जानते हैं ।

रोगी—मेरी डाक्टरी खत्म हो चुकी है वकील साहब । अब तो मैं एक रोगी हूँ । अपने डाक्टरों की बात मैं एक रोगी की तरह ही सुनता हूँ और उस पर अमल करता हूँ लेकिन अब जिन्दगी का प्याला भर चुका है । इसीलिए मैं कहता हूँ यह सब काम मेरे सामने हो जाय ताकि पीछे कोई फिसाद खड़ा न हो ।

वकील—यह दुरुस्त है ।

रोगी—आप मसविदा तैयार कर लाये हैं ?

वकील—मसविदा तैयार होते क्या देर लगती है ? पहले यह तो तैयार हो ।

रोगी और वकील दोनों गायत्री की ओर देखने लगे । मैंने

सोचा निजी बातचीत में मेरा बैठना ठीक नहीं। मैं चलने लगा। गायत्री ने रोककर कहा—आप बैठे रहें। आपके रहने से कोई हर्ज नहीं होता।

इसके बाद उसने उधर मुंह करके कहा—मुझे इतनी बड़ी जायदाद लेकर क्या करना है? दस-बीस रुपये महीने में मेरा और मेरी बच्ची का गुजारा हो जायगा। आप मेरे पीछे यह जंजाल क्यों लगाना चाहते हैं?

वकील—यह आपकी खामखयाली है। डाक्टर साहब ने यह जो दस लाख की संपत्ति इकट्ठी की है वह क्या वे यों ही दूसरों के उड़ाने के लिए छोड़ जायं? आप डाक्टर साहब की पत्नी हैं। आप पर उनका स्नेह स्वाभाविक है। इसीसे वे चाहते हैं कि उनके बाद यह जायदाद आपकी रहे। आपके बाद अपनी बच्ची की।

गायत्री—मैं डाक्टर साहब की पत्नी अवश्य हूँ। हिन्दू शास्त्र यही कहता है परन्तु मेरी आत्मा जानती है कि मुझसे पत्नी का सुख इन्हें कितना मिला। फिर कैसे मैं अनधिकार चेष्टा करूं?

वकील—यह शिकायत तो इनकी ओर से आनी चाहिए। जब ये उस सुख से संतुष्ट हैं तो आपको क्या आपत्ति?

रोगी—वकील साहब, ये यदि नहीं भी लें तो भी आप मेरी विल लिखिये। मैंने बुढ़ापे में विवाह करके एक नवयुवती का जीवन नष्ट किया। उसके प्रायश्चित के लिए मेरे पास इसके सिवा

और क्या है ? ये जिस काम में चाहें उसे लगा सकती हैं ।

गायत्री की आंखें सजल हो गईं । वह अंचल से उन्हें पोंछने लगी । मुझे अधिक बैठना असह्य हो गया । मैंने कहा—मुझे आज्ञा दीजिये ।

मैं उठ खड़ा हुआ । गायत्री ने मुझे रोका नहीं । एक-एक करके सबको हाथ जोड़कर मैं बाहर निकल आया । पानदान की मुझे याद थी परन्तु मैंने उसके लिए पूछा नहीं । खाली हाथ चला आया ।

लौटते समय रेल में मैंने इस घटना को कहानी के रूप में लिख लिया और जब घर पहुंचा तो पानदान के स्थान पर उसे ही भाभी को पढ़ने के लिए दे दिया । पढ़कर वे संतुष्ट हुईं । पानदान न मिलने की शिकायत उन्हें नहीं रही । केवल यह जिज्ञासा तो हम सबके मन में बनी रही कि डाक्टर साहब के विल का क्या हुआ और गायत्रीदेवी कहां और कैसी हैं ?

★

पाप की कहानी

मेरे एक साथी हिकमत करते हैं। बड़े सीधे। बड़े भोले। लोगों में गऊ कहलाते हैं। हंस कर बोलते, हंस कर मिलते। जो जाता उनकी तारीफ करता जो आता उनके गीत गाता। हाथ में यश, वाणी में फूल। गरीब-अमीर सबके दोस्त। वे एक दिन सांझ को मेरे पास आकर बैठ गये। मुंह सूख रहा था। भीतर कोई बेचैनी थी, जो बिना बताये चेहरे पर झलक रही थी। मैंने पूछा—क्यों, भाई साहब! तबियत तो ठीक है? आज अस्पताल नहीं गये?

"नहीं गया, भाई। रोज तो जाता हूँ, आज नहीं जा सका। आज मुझमें अस्पताल जाने की ताब नहीं है।"

मैंने पूछा—ऐसी क्या बात है, भाई-साहब! भौजी तो ठीक है?

वे बोले—भौजी भी ठीक हैं। मैं भी ठीक हूँ। हमारा क्या बिगड़ा है? लेकिन भाई मेरा कुछ भी तो सही सलामत नहीं है। हृदय, मन और मस्तिष्क सभी तो तार-तार हो गया है। किसी में आपस में मेल नहीं। मेरे भीतर के शांति, सुख और

उनके समवाय का नाश हो चुका है। बाहर से ऐश्वर्य का आडंबर रचकर मैं भीतर से कंगाल हो गया हूँ। तुम मेरे इतने निकट के साथी हो। तुम मेरी हर बात के जानने के अधिकारी हो। मुझसे तुम्हारा कुछ छिपाव नहीं है। तुमने मुझसे बाहर-भीतर की सब बातें कह डाली हैं। तुम देवता हो, भाई; और मैंने अब तक अपने हृदय के कितने ही बन्द कमरों को तुम्हारे निकट नहीं खोला है। जिन बातों से मेरा मान तुम्हारे निकट बढ़े, जिन बातों से मेरे भीतर का राक्षस तुम्हारे आगे प्रकट न हो, वे ही बातें—केवल वे ही बातें, मैंने तुम्हें बतलाई हैं। अपने पापों की मंजूषा को कितने यत्न से मैं तुमसे छिपाता रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ। आज उसका भार असह्य हो गया है। आज यदि मैं तुम्हारे समीप सब कुछ स्वीकार नहीं कर लेता तो मेरा अस्तित्व खतरे में पड़ जायगा। इसलिए भाई, इस संध्या में, इस एकांत में, मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारा कुछ समय नष्ट करूंगा। तभी कल मैं अस्पताल जाने लायक हो सकूंगा।

इस तरह कह कर वे थोड़ा ठहर गये। मैं कुछ नहीं बोल सका। तब उन्होंने धीरे-धीरे इस प्रकार कहना शुरू किया—तुम्हें मालूम है, जब मेरा ब्याह हुआ था। उस समय मेरी अवस्था सत्ताईस वर्ष के लगभग थी। मेरा उन दिनों कोई तीन-चार से एक व्यक्ति से घनिष्ट संबंध था। एक व्यक्ति क्यों कहूं?

उसका नाम ही क्यों न बता दूं। जब तुम भी उससे परिचित हो, और मुझे उस संबंध में कोई रहस्य नहीं रखना है। उस महावीर ने घनिष्ठता के साथ-साथ मेरे ऊपर काफी प्रभाव जमा लिया था। एक तरह से इस घोरतम पाप का गुरु-मन्त्र मुझे उसीने दिया। मैं यह जानता हूँ कि इस पाप का उसने दूर-दूर तक प्रचार किया है। वह स्वयं भी इसका शिकार हुआ है। परन्तु मैं नहीं जानता कि मेरे सिवाय और कोई भी इस पश्चात्ताप की आग में दिन रात जलता है। हां, महावीर के बारे में मैं कह सकता हूँ कि उसका हृदय अब तक विरक्त नहीं हुआ है। उसने आज तक इसे त्याज्य नहीं समझा है। वह इसे पाप नहीं मानता है। वह इसे जीवन का एक आनंद और अपनी विद्या-बुद्धि का निशान मानता है। कितने ही नौजवानों को अब भी वह अपना गुरुमंत्र देता रहता है।

मेरे ब्याह से पहले ही महावीर ने मेरे मन में यह विश्वास जमा दिया था कि स्त्री भोग की वस्तु है। तुम जानते हो एक नौजवान के लिए यह उपदेश कितना आकर्षक हो सकता है। उसकी दूसरी शिक्षा यह थी कि स्त्री उपयोग्य तभी तक रहती है जब तक संतानवती न हो। कितनी सहज और सत्य उसकी भूमिका थी। इतना ज्ञान हो जाने पर मैं जानता हूँ कि हम दोनों के दिन इन्हीं स्थापनाओं के परीक्षण में बीतते थे। मेरा कमरा तुम जानते हो उन दिनों सड़क के किनारे था। कमरे का एक कोना चौराहे पर था। कमरे का दूसरा सिरा उस गली में झांकता था

जिसके भीतर सैकड़ों परिवार रहते हैं। मतलब यह कि हमारा बैठने का स्थान इस परीक्षण के लिए नितान्त उपयुक्त था। दिन भर कोई न कोई आती जाती ही रहती थी। हर अवस्था की और प्रकार की युवतियों और प्रौढ़ाओं को हम लोग दिन भर देखते थे और उनकी आलोचना करते थे। अपने दूसरे साथियों से भी जिनके विवाह हो चुके थे उनसे कभी-कभी हम इस विषय की चर्चा कर लेते थे। इस तरह बहुत-सा समय लगा कर हम दोनों एक मत हो गये थे कि स्त्री माता बन कर पुरुष के लिए काम की नहीं रहती।

इसी बीच महावीर की बहिन का व्याह हुआ। उस व्याह में दूर-दूर नगरों और गांवों से नाते-रिश्तेदार ढेर के ढेर आये। उनमें लड़कियां, युवतियां और वयस्काएं सभी थीं। छोटा-सा घर खचाखच भर गया था। लेटने-बैठने की तंगी थी। विशेष उत्सवों के अवसर पर और भी भीड़ हो जाती थी। करीब दस-पंद्रह दिन यह भीड़ रही। महावीर ने इस अवसर का खूब लाभ उठाया। अनेक अनुभव किये अद्भुत और अपूर्व। विवाह के बाद उसने मुझे अपने अनुभवों का विस्तृत वर्णन सुनाया। उसके नये अनुभवों में उसकी मान्यताओं का शत-प्रतिशत समर्थन था।

मतलब यह कि अपने व्याह से पहले मैं स्त्री-शास्त्र का इस तक जानकार हो गया था। मेरा व्याह हुआ। पत्नी आई, अपनी सोहागरात के क्षण से ही मुझे यह चिन्ता पड़ी कि

उसका यौवन बिगड़ने न पाये। मेरी पत्नी मालूम पड़ता है मेरे भय का कुछ आभास पा गई थी। आखिर उसने लजाते-लजाते एक दिन कह दिया—इतने झिझकते क्यों हो ? यहां कोई फूल थोड़े ही हूँ जो कुम्हला जायंगे।

इस पर मैंने बड़े प्यार से उसे इस प्रकार प्रबोधन देने की चेष्टा की—तुम नहीं जानती कि तुम कितनी सुन्दर हो। तुम्हारी सुन्दरता यौवन का वरदान है। मैं चाहता हूँ यौवन का यह वरदान ओस की बूंद की तरह ढल न जाय। मैं तुम्हारे शरीर में इसे अमर देखना चाहता हूँ।

मेरी पत्नी मेरी इस बातों पर हंस पड़ी। मैंने कहा—तुम इसे मजाक समझती हो। तुम नहीं जानती कि संसार में कुछ भी असाध्य नहीं। अगर अच्छी तरह प्रयत्न किया जाय तो सभी कुछ संभव है।

वह उसी तरह अविश्वास भाव से बोली—क्या संभव है ? तुम मेरे रूप और यौवन को अमर कर दोगे ? कर दो, मैं तो बड़ी खुश होऊंगी। ऐसा कौन है जो रूप और यौवन को न चाहेगा।

मैंने कहा—मेरा मतलब है कि वह जल्दी न ढल जाय। जितना हो सके उसकी रक्षा की जाय।

"कैसे ?"

"संतान पैदा न की जाय।"

मेरी पत्नी बिगड़ उठी। कहा—चलो, हटो। बड़े आये

बोली—तुम बड़े वैसे हो। तुम्हारी करतूतों का फल मुझे भोगना पड़ रहा है।

मुझे इस पर प्रसन्न होना चाहिए था, परन्तु बता नहीं सकता कि मुझे कितना दुख हुआ। मेरे दिमाग में रह रह कर यही विचार आने लगा कि यह तो सब चौपट हो गया। मेरी स्त्री का यह रूप-लावण्य अब कुछ दिनों का ही मेहमान है। यह उभरा हुआ वक्ष, ये भरे हुए अंग, यौवन की यह मरोर, आंखों की यह मदिरा इतनी जल्दी मुझसे छिन जायगी। जीवन का कुछ भी आनंद तो नहीं ले पाया। परमात्मा ने मेरे साथ बड़ा धोखा किया। आज वह अपनी सफलता पर बैठा हंस रहा होगा। मैं कैसा मूर्ख हूँ जो अब तक सोच विचार ही करता रहा।

इस तरह उस दिन मुझे कष्ट रहा। मेरी पत्नी मेरे मन की दुर्भावना से परिचित नहीं थी तो भी मेरी पिछली बातों को याद करके और मुझे चुपचाप बैठा देख कर उसने व्यंग्य किया—क्यों तुम्हारी वह विद्या कहां गई? अब क्या करोगे? सच तो यह है कि जो जिससे जितना भागता है उसे वह उतना ही मिलता है। आदमी को बड़ा बोल नहीं बोलना चाहिए। आओ, जमीन पर माथा टेको और भगवान से विनती करो।

"क्या विनती करूं?"

"यही कहो कि भगवान्, हमें संतान नहीं चाहिए। हमें तो अपनी पत्नी का अनंत यौवन चाहिए। मैं उसके रूप और उसकी ...नों में किसी साझीदार को नहीं सह सकता।"

यह कह कर वह खिलखिला कर हंस पड़ी। मुझे पकड़कर प्रार्थना की मुद्रा में बैठाने का उपक्रम करने लगी।—यदि सचमुच मुझे परमात्मा पर भरोसा होता तो मैं अवश्य उसकी बात मान लेता और अपने हृदय की समस्त श्रद्धा के साथ उसके वाक्यों को दोहराता। परन्तु वास्तव तो यह था कि मैं उस समय परमात्मा से अधिक अपने गुरुवर पर विश्वास करता था।

दूसरे दिन जब मैंने उसे समाचार दिया तो सच्ची समवेदना के भाव की झलक मैंने उसके चेहरे पर पाई।

- इसके बाद तीखे शब्दों में मेरी भर्त्सना करते हुए उसने मुझे इन शब्दों में धिक्कारा—मजनूं कहीं के। मैंने पहले ही कहा था कि उपाय करो नहीं पछताओगे। अब जाओ बच्चू, सारी जिन्दगी नरक में पड़े रहो। स्वर्ग का आनद सबके भाग्य में नहीं होता—और इस पृथ्वी पर स्वर्ग के मजे तो किसी विरले को ही नसीब होते हैं।

इस स्वर्ग के आनंद से कहीं वंचित न हो जाना पड़े, इसलिए मैं बड़ी फिक्र में पड़ गया। मेरी पत्नी में गर्भ के लक्षण प्रकट हो रहे थे। मचली आती थी। शरीर न उठता था। लेटने को जी करता था। मैंने उससे कहा—दवाई ले डालो तो कुछ फायदा होगा।

वह बोली—अपनी हिकमत अपने पास ही रहने दो।

मैंने कहा—तुम कैसी पगली हो। किसी बात पर विश्वास ही नहीं करती हो।

उत्तर मिला—और तुम कैसे हकीम हो जो इस दशा में भी दवाई की व्यवस्था करते हो ? क्या मैं बीमार हूँ ? प्राकृतिक जो लक्षण होने चाहिए वे ही तो हैं, फिर दवा की क्या जरूरत ?

मैंने प्यार से समझाते हुए कहा—यह ठीक है, लेकिन दवाई तो इसलिए होती है कि स्वाभाविक अस्वाभाविक सभी तरह के लक्षणों से उत्पन्न कष्टों को शमन करे ।

इतने पर भी मेरी पत्नी दवा लेने को तैयार नहीं हुई। परन्तु मैंने भी आग्रह न छोड़ा । आखिर आठ-दस दिन के बाद धीरे-धीरे उसे तैयार कर पाया । मैंने उस दिन उसे थोड़ा-सा शरबत दिया । दूसरे दिन दूसरी दवा दी, तीसरे दिन तीसरी दी। इसी प्रकार कई दिन तक दवाओं का क्रम चलता रहा । आखिर एक दिन रात को दो बजे उसके पेट में बड़े जोर का दर्द हुआ और दो घंटे बाद गर्भपात हो गया । मां बड़ी घबड़ाईं । डाक्टर बुला लाने को कहा । मैंने घड़ी की सुई दो घंटे पीछे कर दी और कहा—अभी बहुत रात है । इस समय डाक्टर कहां मिलेंगे ? तब तक कहो तो मैं हीं पुड़िया दे दूं । सब ठीक हो जायगा ।

डाक्टर को बुलाने की जरूरत नहीं पड़ी। सब ठीक हो गया । पन्द्रह-बीस दिन की कमजोरी झेलकर मेरी पत्नी फिर चंगी हो गई । एक महीने बाद उसके कपोलों पर वही लालिमा और होठों पर वही मुस्कराहट खेलने लगी ।

अब उसकी स्वस्थावस्था में भी मैं उसे कमजोरी दूर करने बहाने ऐसी-ऐसी दवायें देता रहा जिससे फिर गर्भ न रह सके ।

कभी-कभी वह मेरे आग्रह से चिढ़ जाती थी, और कह बैठती थी—मैं तुम्हारी दवा मैं न खाऊंगी। तुम्हारी दवा ने ही मेरे प्राण संकट में डाल दिये थे।

एक दिन वह हंसी हंसी में कह बैठी—कहीं तुमने जान बूझकर मेरे रूप-यौवन की रक्षा करने के लिए यह भयानक पाप तो नहीं कर डाला ?

परन्तु मेरे मुंह का रंग उड़ा देखकर वह सरला अपने कटु हास्य के लिए क्षमा मांगते हुए बोली—छिः मैं भी कैसी हूँ! मैं क्या क्या कह बैठती हूँ ? कहीं यह भी संभव हो सकता है ?

इसके बाद इतनी सावधानी पर भी दो बार फिर मेरी पत्नी के गर्भ रहा और मेरे प्रयत्नों ने उसे दोनों बार नष्ट कर दिया। मालूम पड़ता है, इसके बाद परमात्मा मुझसे रूठ गया। फिर कोई उपद्रव नहीं हुआ। जब मेरी अवस्था धीरे धीरे प्रौढ़ हो चली, तो मुझे कुछ कुछ अभाव-सा अपने जीवन में प्रतीत होने लगा। पत्नी के रूप और यौवन से भी आवश्यक किसी वस्तु के अस्तित्व की कमी मैं अनुभव करने लगा। परन्तु अब क्या हो सकता था ? मैं भीतर ही भीतर उद्विग्न रहने लगा। मेरी पत्नी तो रात-दिन इसी चिन्ता में घुनी जा रही थी। कभी-कभी जब बहुत व्याकुल हो जाती और न रहा जाता तो पूछ बैठती—क्या कोई उपाय न करोगे ? क्या इसी तरह हमारा भविष्य अंधेरे में समा जायगा ? एक छोटी बच्ची ही कहीं-से खेलने को मिल जाती।

कोई अस्तित्व ही नहीं है। वे किसी के प्रति अपने को ऋणी नहीं समझते। संसार को असली अर्थों में भोगभूमि मानने वालों में यह जोड़ी अपनी उपमा नहीं रखती।—हाय, पर मैं क्या करूं? मेरे पास तो इतना साहस भी नहीं। एक दुर्बल प्राणी पर पापों का यह पृथुल हिमालय! भैया, मैं सचमुच दबा जा रहा हूँ।

इतना कहकर वे इतने जोर से कराहने लगे जैसे निश्चय ही किसी पहाड़ से पिसे जा रहे हों। मैंने झट उठकर हाथ के सहारे से उन्हें सीधा किया और आर्द्र कंठ से कहा—प्रार्थना करो। भगवान से क्षमा मांगो भाई साहब। वह परम दयालु है। वह आपको कोई शान्ति प्रदान करेगा।

वे बोले—अब मैं प्रार्थना पर अश्रद्धा नहीं रखता भैया। मैं नित्य प्रार्थना करता हूँ। दिन में अनेक बार प्रार्थना करता हूँ।

इतना कह कर वे कुर्सी से उतर कर घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठ गये और दोनों हाथ जोड़कर आंखें बंद करके कहने लगे—करुणावतार, मुझे क्षमा करो। मुझे शांति दो। मैं आपकी शरण हूँ।

यह दृश्य देखकर क्षण भर के लिए मेरी आंखें तरल हो उठीं.

यह सुनकर मैं परिस्थिति की उदासी को दूर करने के लिए हँस पड़ता और उसकी पुरानी बात याद दिलाकर कहता—तुम्हीं ने तो कहा था कि संतान पैदा करना न करना क्या किसी के वश की बात है।

वह भी हँस पड़ती—भोली और अबोध हँसी। परन्तु उसकी यह हँसी मेरे कलेजे के आरपार हो जाती।

इधर दो वर्ष हुए तुम्हें याद होगा जब मैं सख्त बीमार हो गया था। उस समय मुझे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दिखता था। अपने शरीर में रूप और यौवन की राशि लिए हुए मेरी पत्नी मेरे पास बैठी थी। तब मुझे लग रहा था कि मैंने कितना बड़ा अनर्थ कर डाला है। मैं तो जा रहा हूं। अब मेरी यह रूपराशि कौन संभालेगा ? लेकिन उस बार उस देवी के सौभाग्य से मैं बच गया और अब तक जीवित हूँ परन्तु मेरा हृदय भीतर से धधक रहा है। इच्छा होती है कि सब कुछ स्वीकार करके अपनी पत्नी से अपने पापों के लिए क्षमा-याचना कर लूं परन्तु इस डरसे कि वह इतना बड़ा आघात सह न सकेगी, मैं सारा भार स्वयं लिए फिरता हूँ।

लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि महावीर को किसी तरह का विषाद नहीं। वह अपनी पत्नी को लिए अकेला मौज कर रहा है। उसकी राक्षसी क्षुधा अभी तक निवृत्त नहीं हुई है। सौभाग्य से स्त्री भी उसे वैसी ही मिल गई है। वह भी अतृप्त वासना से आठों पहर उद्दीप्त रहती है। उनके सामने भविष्य का

कोई अस्तित्व ही नहीं है। वे किसी के प्रति अपने को ऋणी नहीं समझते। संसार को असली अर्थों में भोगभूमि मानने वालों में यह जोड़ी अपनी उपमा नहीं रखती।—हाय, पर मैं क्या करूं? मेरे पास तो इतना साहस भी नहीं। एक दुर्बल प्राणी पर पापों का यह पृथुल हिमालय! भैया, मैं सचमुच दबा जा रहा हूँ।

इतना कहकर वे इतने जोर से कराहने लगे जैसे निश्चय ही किसी पहाड़ से पिसे जा रहे हों। मैंने झट उठकर हाथ के सहारे से उन्हें सीधा किया और आर्द्र कंठ से कहा—प्रार्थना करो। भगवान से क्षमा मांगो भाई साहब। वह परम दयालु है। वह आपको कोई शान्ति प्रदान करेगा।

वे बोले—अब मैं प्रार्थना पर अश्रद्धा नहीं रखता भैया। मैं नित्य प्रार्थना करता हूँ। दिन में अनेक बार प्रार्थना करता हूँ।

इतना कह कर वे कुर्सी से उतर कर घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठ गये और दोनों हाथ जोड़कर आंखें बंद करके कहने लगे—करुणावतार, मुझे क्षमा करो। मुझे शांति दो। मैं आपकी शरण हूँ।

यह दृश्य देखकर क्षण भर के लिए मेरी आंखें तरल हो उठीं.